શ્રી સ્વામિનારાયણો વિજયતેતરામ્

બ્રહ્મવૈવર્ત પુરાણ ૩

www.neelkanthvarni.com

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम्। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥६३॥
उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने। रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले ॥६४॥
अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम्। अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥६५॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मन्बुद्धिमांश्च[1] बृहस्पतिः। यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः ॥६६॥
पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मनिः। स्वायंभुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः ॥६७॥
कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः। ग्रन्थं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥६८॥
धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च। चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥६९॥
शातातपश्च संवर्तो वशिष्ठश्च पराशरः। यद्धृत्वा पठनाद्ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥७०॥
ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजश्चाऽऽस्तीको देवलस्तथा। जैगीषव्योऽथ जाबालिर्यद्धृत्वा सर्वपूजितः ॥७१॥
कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेष प्रजापतिः। स्वयं बृहस्पतिश्छन्दो देवो रासेश्वरः प्रभुः ॥७२॥
सर्वतत्त्वपरिज्ञाने सर्वार्थेऽपि च साधने। कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥७३॥
ओं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः। श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु ॥७४॥

ब्रह्मा बोले—वत्स! मैं तुम्हें वह समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला कवच बता रहा हूँ। यह कवच वेदों का तत्त्व, सुनने में सुखप्रद, वेदों में प्रतिपादित तथा उनसे अनुमोदित है॥६३॥ रासेश्वर प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण ने गोलोक के वृन्दावन वाले रासमण्डल में रास के समय मुझे यह कवच बताया था। यह अत्यन्त गोपनीय और कल्पवृक्ष के समान है। इसमें अश्रुत एवं अद्भुत मन्त्रों का समूह सम्मिलित है॥६४-६५॥ ब्रह्मन्! इसके धारण और पाठ करने से बृहस्पति बुद्धिमान् हुए और भगवान् शुक्र दैत्यों के पूज्य बने॥६६॥ पाठ और धारण करने से वाल्मिक मुनि कवीन्द्र और उत्तम वक्ता हुए। इसी के धारण से स्वायम्भुव मनु सर्वपूजित हुए॥६७॥ इसी भाँति कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष और स्वयं कात्यायन ने इसको धारण करके ग्रन्थों का निर्माण किया॥६८॥ इसे धारण करके स्वयं कृष्ण द्वैपायन व्यास ने बड़ी सरलता से वेदों का विभाग करके समस्त पुराणों की रचना की॥६९॥ इसे धारण करके शातातप, संवर्त्त, वशिष्ठ, पराशर एवं याज्ञवल्क्य ने ग्रंथों का निर्माण किया। ऋष्यशृंग, भरद्वाज, आस्तीक, देवल, जैगीषव्य, और जाबालि भी इसी के धारण के प्रभाव से सर्वपूजित हुए॥७०-७१॥

विप्रेन्द्र! इस कवच के प्रजापति ऋषि, स्वयं बृहती छन्द और रासेश्वर प्रभु देवता, हैं। समस्त तत्त्वों के परिज्ञान, सर्वार्थ साधन और सभी प्रकार की कविताओं के प्रणयन में इसका विनियोग किया जाता है॥७२-७३॥ ओं ह्रीं स्वरूपिणी सरस्वती के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है, वे सब ओर से मेरे सिर की रक्षा करें। ओं श्रीं वाग्देवता के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है, वे सदा मेरे ललाट की रक्षा करें। ॥७४॥ ओं ह्रीं सरस्वती

---

१ क. यच्छ्रुत्वा म०।

ओं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रं पातु निरन्तरम्। ओं श्रीं ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु ।।७५।।
ओं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु। ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा[१] श्रोत्रं सदाऽवतु ।।७६।।
ओं श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपङ्क्तीः सदाऽवतु। ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदाऽवतु ।।७७।।
ओं श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धं मे श्रीं सदाऽवतु। श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ।।७८।।
ओं ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्। ओं ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठं सदाऽवतु ।।७९।।
ओं सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु। ओं वागधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु ।।८०।।
ओं सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु। ओं ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु ।।८१।।
ओं ऐं श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा। सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु ।।८२।।
ओं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदाऽवतु। कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु ।।८३।।
ओं सदम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदाऽवतु। ओं गद्यपद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु ।।८४।।

के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है, वे निरन्तर कानों की रक्षा करें। ओं श्रीं ह्रीं भारती के लिए श्रद्धा की आहुति दे जाती है। वे सदा दोनों नेत्रों की रक्षा करें। ओं ह्रीं वाग्वादिनी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सब ओर से मेरी नासिका की रक्षा करें। ओं ह्रीं विद्या की अधिष्ठात्री देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे कान की सदा रक्षा करें।।७५-७६।। ओं ह्रीं ब्राह्मी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे दाँतों की पंक्तियों की सदा रक्षा करें। 'ऐं' यह एकाक्षर मंत्र मेरे कंठ की सदा रक्षा करे।।७७।। ओं श्रीं ह्रीं मेरी ग्रीवा की और 'श्रीं' कन्धों की सदा रक्षा करे। श्रीं विद्या की अधिष्ठात्री देवी को श्रद्धा को आहुति दी जाती है। वे सदा वक्षःस्थल की रक्षा करें।।७८।। ओं ह्रीं विद्यास्वरूपा देवी के लिए आहुति दी जाती है। वे मेरी नाभि की रक्षा करें। ओं ह्रीं क्लीं वाणी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे मेरे पृष्ठ भाग की सदा रक्षा करें।।७९।। ओं सर्ववर्णात्मिका देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे दोनों चरणों की रक्षा करें। ओं वाग् की अधिष्ठात्री देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सदा मेरे सर्वांग की रक्षा करें।।८०।। ओं सर्व-कण्ठवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे पूर्व दिशा में सदा रक्षा करें ओं ह्रीं जिह्वाग्रवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे अग्निकोण में रक्षा करें।।८१।। 'ओं ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा' यह मन्त्रराज दक्षिण दिशा में सदा रक्षा करे।।८२।। 'ओं ह्रीं श्रीं' यह तीन अक्षर वाला मंत्र नैर्ऋत्य कोण में सदा रक्षा करे। कविजिह्वाग्रवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सदा पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें।।८३।। ओं सदम्बिका देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे वायव्य कोण में मेरी रक्षा करें। ओं गद्यपद्यवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें।।८४।। ओं सर्वशास्त्रवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती

---

१ क. ०हा चौष्ठं स० ।

ओं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदाऽवतु। ओं ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु॥८५॥
ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदाऽवतु। ओं ग्रन्थबीजरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु॥८६।
इति ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम्॥८७॥
पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गन्धमादने। तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥८८॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः ॥८९॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्। यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्॥९०॥
महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत्। शक्नोति सर्वं जेतुं स कवचस्य प्रभावतः[1] ॥९१॥
इदं ते काण्वशाखोक्तं कथितं कवचं मुने। स्तोत्रं पूजाविधानं च ध्यानं वै वन्दनं तथा॥९२॥

इति श्री ब्रह्म० महा० प्रकृ० नारदनारायणसंवादे सरस्वतीकवचं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नारायण उवाच

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम्। महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा॥१॥

है। वे सदा ईशानकोण में मेरी रक्षा करें। ओं सर्वपूजिता देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सदा ऊर्ध्व भाग में रक्षा करें॥८५॥ 'ऐं ह्रीं' पुस्तकवासिनी देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे सदा निम्न भाग में रक्षा करें। ओं ग्रन्थबीजस्वरूपा देवी के लिए श्रद्धा की आहुति दी जाती है। वे चारों ओर से मेरी रक्षा करें॥८६॥ विप्र! यह विश्वजय नामक कवच, जो समस्त मंत्र-समुदायों का साक्षात् शरीर और ब्रह्मस्वरूप है, तुम्हें बता दिया॥८७॥ इसको पहले समय गन्धमादन पर्वत पर धर्म के मुख से मैंने सुना था। केवल तुम्हारे स्नेहवश मैंने उसे कहा है, अतः किसी को बताना नहीं॥८८॥ वस्त्र, अलंकार और चन्दनों द्वारा गुरु की सविधि अर्चना और भूमि पर दण्डवत्प्रणाम करके यह कवच बुद्धिमान् को धारण करना चाहिए॥८९॥ पाँच लाख जप करने से यह कवच सिद्ध होता है और सिद्ध हो जाने पर वह पुरुष बृहस्पति के समान हो जाता है॥९०॥ वह महा-वक्ता एवं त्रैलोक्यविजयी कवीन्द्र होता है। इस कवच के प्रभाव से वह सब कुछ जीत सकता है॥९१॥ मुने! इस प्रकार काण्व शाखा में प्रतिपादित कवच, स्तोत्र, पूजाविधान, ध्यान और वन्दन भी मैंने तुम्हें बता दिये॥९२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में सरस्वतीकवच नामक चौथा अध्याय समाप्त॥४॥

अध्याय ५

याज्ञवल्क्य द्वारा सरस्वती की स्तुति

नारायण बोले—मैं तुम्हें सरस्वती का सकलकामनादायक स्तोत्र बता रहा हूँ, जिसके द्वारा महामुनि याज्ञवल्क्य ने पहले उनकी स्तुति की थी॥१॥ जब मुनि याज्ञवल्क्य की विद्या गुरु के शाप के कारण नष्ट हो गयी तब

---

१ क. प्रदानतः।

गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह। तदा जगाम दुःखार्तो रविस्थानं च पुण्यदम् ॥२॥
संप्राप्य तपसा सूर्यं कोणार्के दृष्टिगोचरे। तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद च पुनः पुनः ॥३॥
सूर्यस्तं पाठयामास वेदवेदाङ्गमीश्वरः। उवाच स्तुहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे ॥४॥
तमित्युक्त्वा दीननाथो ह्यन्तर्धानं जगाम सः। मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥५॥

याज्ञवल्क्य उवाच

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम्। गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम् ॥६॥
ज्ञानं देहि स्मृतिं देहि विद्यां विद्याधिदेवते। प्रतिष्ठां कवितां देहि शक्तिं शिष्यप्रबोधिकाम् ॥७॥
ग्रन्थनिर्मितिशक्तिं च सच्छिष्यं सुप्रतिष्ठितम्। प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम् ॥८॥
लुप्तां सर्वां [1]दैववशान्नवं कुरु पुनः पुनः। यथाऽङ्कुरं जनयति भगवान्योगमायया ॥९॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी। सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः ॥१०॥
यया विना जगत्सर्वं शश्वज्जीवन्मृतं सदा। ज्ञानाधिदेवी या तस्यै सरस्वत्यै नमो नमः ॥११॥
यया विना जगत्सर्वं मूकमुन्मत्तवत्सदा। वागधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः ॥१२॥

अत्यन्त दुःखी हुए और सूर्य के पुण्यप्रद स्थान की ओर चल पड़े ॥२॥ कोणार्क क्षेत्र में पहुँच कर तप द्वारा सूर्य का प्रत्यक्ष दर्शन करके स्तुति करने लगे तथा शोक से बार-बार रोने भी लगे ॥३॥ सूर्य भगवान् ने उन्हें वेद-वेदांग का अध्ययन कराया और कहा कि तुम स्मरण-शक्ति प्राप्त करने के लिए सरस्वती की भक्तिपूर्वक स्तुति करो ॥४॥ दीनों के स्वामी सूर्य उन्हें इस भाँति कह कर अन्तर्हित हो गए और मुनि स्नानोपरांत भक्तिपूर्वक सिर झुका कर देवी की स्तुति करने लगे ॥५॥

याज्ञवल्क्य बोले—हे संसार की माता ! गुरु के शाप से मेरा तेज नष्ट हो गया है। मेरी स्मृति और विद्या भी जाती रही। आप मेरे ऊपर कृपा करें ॥६॥ हे विद्याधिदेवता ! मुझे ज्ञान, स्मृति, विद्या, प्रतिष्ठा, कवित्व-शक्ति, शिष्यों को प्रबोधन कराने वाली शक्ति तथा ग्रन्थ निर्माण करने की शक्ति प्रदान करें। साथ ही मुझे अपना उत्तम एवं सुप्रतिष्ठित शिष्य बना लीजिए। मुझे प्रतिभा तथा सत्पुरुषों की सभा में विचार प्रकट करने की उत्तम क्षमता दीजिए ॥७-८॥ दुर्भाग्यवश मेरी नष्ट हुई इन सब चीजों को आप पुनःपुनः उसी प्रकार नवीन कर दें जिस प्रकार भगवान् योगमाया द्वारा अंकुर उत्पन्न करते हैं ॥९॥ मैं उन सरस्वती देवी को बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ, जो ब्रह्मस्वरूपा, परम ज्योतिःस्वरूपा, सनातनी (नित्या) और समस्त विद्याओं की अधीश्वरी हैं ॥१०॥ जिनके बिना सम्पूर्ण जगत् निरन्तर जीवित रहते हुए भी सदा मृतक के समान है, उन ज्ञानाधिदेवी सरस्वती को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥११॥ जिनके बिना समस्त जगत् सदा मूक (गूंगे) और उन्मत्त की भाँति रहता है, उन वाणी की अधिष्ठात्री देवी को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१२॥ हिम (बर्फ), चन्दन, कुन्दपुष्प, चन्द्र, कुमुद

---

१ क. ०वदोषान्नवी भूतं पुनः कुरु।

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभा। वर्णाधिदेवी या तस्यै चाक्षरायै नमो नमः ॥१३॥
विसर्गबिन्दुमात्राणां यदधिष्ठानमेव च। इत्थं त्वं गीयसे सद्भिर्भारत्यै ते नमो नमः ॥१४॥
यया विनाऽत्र संख्याकृत्संख्यां कर्तुं न शक्नुते। कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥१५॥
व्याख्यास्वरूपा या देवी व्याख्याधिष्ठातृदेवता। भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥१६॥
स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी। प्रतिभा कल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः ॥१७॥
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै। बभूव जडवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः ॥१८॥
तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः। उवाच स च तं स्तौहि वाणीमिति प्रजापते ॥१९॥
स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाऽऽज्ञया परमात्मनः। चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम् ॥२०॥
यदाऽप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुंधरा। बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः ॥२१॥
तदा त्वां च स तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया। ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम् ॥२२॥
व्यासः पुराणसूत्रं समपृच्छद्वाल्मिकिं यदा। मौनीभूतः स सस्मार त्वामेव जगदम्बिकाम् ॥२३॥
तदा चकार सिद्धान्तं त्वद्वरेण मुनीश्वरः। स प्राप निर्मलं ज्ञानं [2]प्रमादध्वंसकारणम् ॥२४॥

और श्वेत कमल के समान वर्ण (रंग) वाली तथा वर्णों की अधिष्ठात्री देवी अक्षरस्वरूपा सरस्वती को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१३॥ विसर्ग, विन्दु और मात्रा —इन तीनों का जो अधिष्ठान है, वह आप हैं—इस प्रकार साधु पुरुष आपकी महिमा का गान करते हैं। ऐसी भारती देवी को बार-बार नमस्कार है ॥१४॥ संख्या करने वाले लोग जिनके बिना संख्या नहीं कर सकते, उन कालसंख्या-स्वरूपिणी देवी को बार-बार नमस्कार है ॥१५॥ व्याख्या स्वरूपा, व्याख्या की अधिष्ठात्री देवता और भ्रम तथा सिद्धान्त रूप वाली देवी को बार-बार नमस्कार है ॥१६॥ जो स्मरणशक्ति, ज्ञानशक्ति, बुद्धिशक्ति तथा प्रतिभाशक्ति एवं कल्पनाशक्ति स्वरूपा हैं. उन भगवती को बार-बार नमस्कार है ॥१७॥

एक बार सनत्कुमार ने ब्रह्मा से ज्ञान के विषय में प्रश्न किया। किन्तु वे (ब्रह्मा) सिद्धान्त रूप में कुछ कहने में असमर्थ होने के कारण जड़वत् हो गए ॥१८॥ उस समय वहाँ ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण आये और उन्होंने सरस्वती का उत्तम स्तोत्र ब्रह्मा को बताया ॥१९॥ परमात्मा की आज्ञा से ब्रह्मा ने उसी स्तोत्र द्वारा सरस्वती की स्तुति की और उनकी कृपा से उत्तम सिद्धान्त के विवेचन में वे सफल हो गए ॥२०॥ इसी प्रकार एक बार पृथ्वी ने अनन्त नाग से ज्ञान की चर्चा की, किन्तु वे भी सिद्धान्त को न बता सके, प्रत्युत मूकवत् हो गए ॥२१॥ फिर घबराये हुए नाग ने कश्यप की आज्ञा से सरस्वती की स्तुति की। पश्चात् उन्होंने भ्रमनिवारक एवं निर्मल सिद्धान्त का निर्माण किया ॥२२॥ व्यास ने वाल्मिकि मुनि से पुराणों का सूत्र पूछा, किन्तु मौन रहने के अतिरिक्त वे भी कुछ न कह सके। अनन्तर वे जगदम्बिका रूप तुम्हारा ही स्मरण करने लगे ॥२३॥ तुम्हारे वरदान से मुनीश्वर ने उन्हें सिद्धान्त बताया जिससे उन्होंने प्रमाद का ध्वंस करने वाला निर्मल ज्ञान प्राप्त किया ॥२४॥ पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण की कला

---

१ क. म्बिके। २ क. प्रदध्यौ स च का०।

पुराणसूत्रं श्रुत्वा स व्यासः कृष्णकलोद्भवः। त्वां सिषेवे च दध्यौ तं शतवर्षं च पुष्करे ।।२५।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो बभूव ह। तदा वेदविभागं च पुराणानि चकार ह ।।२६।।
यदा महेन्द्रे पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिवा शिवम्। क्षणं त्वामेव संचिन्त्य तस्यै ज्ञानं ददौ विभुः ।।२७।।
पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम्। दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे ।।२८।।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यं वर्षसहस्रकम्। उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम् ।।२९।।
अध्यापिताश्च यैः शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः। ते च त्वां परिसंचिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरि ।।३०।।
त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानवैः। दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ।।३१।।
जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः। यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः ।।३२।।
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः। प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ।।३३।।
तदा ज्योतिः स्वरूपा सा तेनादृष्टाऽप्युवाच तम्। सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह ।।३४।।
महामूर्खश्च दुर्मेधा वर्षमेकं च यः पठेत्। स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद्ध्रुवम् ।।३५।।

इति श्रीब्र० महा० प्रकृति० नारदना० याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवनं
नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

(अंश) से उत्पन्न व्यास ने पुराण सूत्र सुनने के उपरान्त पुष्कर क्षेत्र में सौ वर्षों तक आप (सरस्वती) का ध्यान पूजन किया, फिर आपसे वरदान प्राप्त करके वे कवीन्द्र हुए ।।२५३।। उसी समय उन्होंने वेदों का विभाजन और पुराणों की रचना की। जिस समय महेन्द्र पर्वत पर पार्वती ने शंकर से तत्त्वज्ञान पूछा था, उस समय शिव ने क्षण भर आपका ध्यान करके पार्वती को ज्ञान दिया। फिर इन्द्र ने बृहस्पति से व्याकरणशास्त्र के विषय में पूछा, तो उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में दिव्य सौ वर्षों तक आपका ध्यान-पूजन किया। अनन्तर आपसे वरदान पाकर दिव्य सौ वर्षों तक इन्द्र को अर्थ समेत व्याकरण शास्त्र का अध्ययन कराया ।।२६-२९।। हे सुरेश्वरि ! जिन मुनीश्वरों ने स्वयं अध्ययन किया और अपने शिष्यों को अध्ययन कराया, वे लोग उस कार्य में आपका भली भाँति ध्यान कर के ही प्रवृत्त हुए ।।३०।। श्रेष्ठ मुनिगण, मनुगण, दैत्य, देव, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि ने आपकी स्तुति और पूजा की है। जिन (आप) की स्तुति करने में शेष, शिव और ब्रह्मा भी जड़ की भाँति हो गए उनकी स्तुति भला एक मुख वाला मैं मानव कैसे कर सकता हूँ ।।३१-३२।। इतना कह कर याज्ञवल्क्य ने भक्तिपूर्वक कन्धे को झुकाए हुए, देवी को प्रणाम किया और निराहार रह कर बार-बार रोदन किया ।।३३।। उस समय ज्योतिः स्वरूपा सरस्वती ने उनसे न देखी जाने पर भी कहा—'तुम सुप्रख्यात कवि हो, जाओ।' यों कह कर देवी वैकुंठ को चली गई ।।३४।। महामूर्ख एवं अत्यन्त कठोर बुद्धि वाला मनुष्य भी यदि एक वर्ष तक इसका पाठ करेगा तो वह निश्चित रूप से पण्डित, मेधावी और महान् कवि होगा ।।३५।।

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में याज्ञवल्क्योक्त सरस्वती-
स्तोत्र नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।।५।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

नारायण उवाच

सरस्वती सा वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके। गङ्गाशापेन कलया कलहाद्भारते सरित् ॥१॥
पुण्यदा पुण्यजननी पुण्यतीर्थस्वरूपिणी। पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥२॥
तपस्विनां तपोरूपा तपस्याकाररूपिणी। कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥३॥
ज्ञाने सरस्वतीतोये गतं यैर्मानवैर्भुवि। तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि ॥४॥
भारते कृतपापश्च स्नात्वा तत्रैव लीलया। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके वसेच्चिरम् ॥५॥
चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये। ग्रहणे च व्यतीपातेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपि च ॥६॥
अनुषङ्गेण यः स्नाति हेलया श्रद्धयाऽपि वा। सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि ॥७॥
सरस्वतीमन्त्रकं च मासमेकं तु यो जपेत्। महामूर्खः कवीन्द्रश्च स भवेन्नात्र संशयः ॥८॥
नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नात्वा मुण्डयेन्नरः। न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः ॥९॥
इत्येवं कथितं किंचिद्भारतीगुणकीर्तनम्। सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०॥

अध्याय ६

लक्ष्मी, सरस्वती एवं गंगा का परस्पर शाप

नारायण बोले—वैकुण्ठ में स्वयं नारायण के समीप रहने वाली वह सरस्वती देवी, जिन्हें कलह के कारण गंगा ने शाप दे दिया था, भारत में कलारूप से नदी होकर प्रकट हुई। मुने! वह (सरस्वती नदी) पुण्यप्रदा, पुण्य की जननी, पुण्यतीर्थस्वरूपा हैं। पुण्यात्मा लोगों को उनका सेवन करना चाहिए। उनके तटों पर पुण्यात्माओं की स्थिति है ॥१-२॥ तपस्वी लोगों की तपस्या रूप और तपस्या की मूर्ति रूप वह नदी (प्राणियों के) किए हुए पाप रूप (सूखी) लकड़ी को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्नि रूपा है ॥३॥ भूतल पर सरस्वती के जल में जो ज्ञान-पुरस्सर शरीर त्याग करते हैं, वे वैकुण्ठ में भगवान् की सभा में बहुत दीर्घ काल तक रहते हैं ॥४॥ अतः भारत की उस नदी में स्नान करने से पापी लोग सहज ही में समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में चिरकाल तक निवास करते हैं ॥५॥ चतुर्दशी, पूर्णिमा, अक्षय तृतीया, दिनक्षय, ग्रहण, व्यतीपात और अन्य पुण्य पर्वों में जो कोई उत्कट इच्छा से या श्रद्धा से या खेल के रूप में ही स्नान करता है, वह वैकुण्ठ लोक में निश्चित रूप से भगवान् के सारूप्यमोक्ष को प्राप्त करता है ॥६-७॥ सरस्वती का मन्त्र एक मास तक जपने से महामूर्ख मनुष्य भी कवीन्द्र होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥८॥ सरस्वती के जल में नित्य स्नान करते हुए जो मुण्डन कराता है, वह मनुष्य कभी भी गर्भवास नहीं करता है ॥९॥ इस प्रकार मैंने सरस्वती का कुछ गुण-गान कर दिया, जो सुखप्रद और मोक्षप्रद होते हुए तत्त्वरूप है, अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥१०॥

सौतिरुवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः। पुनः पप्रच्छ संदेहच्छेदं शौनक सत्वरम् ॥११॥

नारद उवाच

कथं सरस्वतीदेवी गङ्गाशापेन भारते। कलया कलहेनैव समभूत्पुण्यदा सरित् ॥१२॥
श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्धते कौतुकं मम। कथामृतानां नो तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते ॥१३॥
कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम्। शान्तसत्त्वस्वरूपा च पुण्यदा सर्वदा नृणाम् ॥१४॥
तेजस्विन्योर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम्। सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१५॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम्। यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥१६॥
लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि। प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठन्ति सततं हरिसंनिधौ ॥१७॥
चकार सैकदा गङ्गा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम्। सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः ॥१८॥
विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च मुदा क्षणम्। क्षमां चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ॥१९॥
बोधयामास तां पद्मा सत्त्वरूपा च सस्मिता। क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह ॥२०॥

सौति बोले—शौनक! नारायण की बात सुन कर मुनिश्रेष्ठ नारद ने उन सन्देह-नाशक (नारायण) से पुनः प्रश्न किया ॥११॥

नारद बोले—कलह के कारण ही गंगा ने सरस्वती को शाप दिया और वे (सरस्वती) अपनी एक कला से पुण्य नदी होकर भारतवर्ष में प्रकट हुई—ऐसा क्यों हुआ? ॥१२॥ यह कथा वेदों का सार रूप तथा अमृत रूप है। मुझे इसके सुनने में कौतुक बढ़ रहा है। क्यों न हो, कल्याण से किसको तृप्ति होती है? ॥१३॥ गंगा ने पूज्य सरस्वती को कैसे शाप दिया। क्योंकि गंगा मनुष्यों को पुण्य देने वाली तथा शान्त और सत्त्व स्वरूप वाली हैं ॥१४॥ अतः इन दोनों तेजस्विनी देवियों के वाद-विवाद का कारण, जो सुनने में सुखप्रद और पुराणों में अत्यन्त दुर्लभ है, मुझे बताने की कृपा करें ॥१५॥

नारायण बोले—नारद! मैं इस पुरानी कथा को तुम्हें सुना रहा हूँ, जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥१६॥ भगवान् विष्णु की लक्ष्मी, गंगा और सरस्वती ये तीन पत्नियाँ थीं, जो प्रेमपूर्वक समान भाव से उनके निकट निरन्तर रहती थीं ॥१७॥ एक बार गंगा सकामा होकर मुसकराती हुई भगवान् विष्णु के मुख को देख रही थीं और बार-बार उन पर कटाक्ष कर रही थीं ॥१८॥ भगवान् विष्णु भी उनका मुख देख कर उस समय प्रसन्न मुख से हँस रहे थे। उसे देख कर लक्ष्मी ने उस पर ध्यान नहीं दिया, किन्तु सरस्वती उसको सहन न कर सकीं ॥१९॥ (यह देख कर) सत्त्वरूपा लक्ष्मी ने प्रेमभाव से सरस्वती को भली भाँति समझाया, किन्तु क्रोधावेश में आ जाने के कारण वे शान्त न हो सकीं ॥२०॥ (क्रोध के मारे) तमतमाया मुख और लाल-लाल आँखें

उवाच गङ्गाभर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना। कम्पिता कोपवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥२१॥

सरस्वत्युवाच

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीः प्रति। धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च ॥२२॥
ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायां ते गदाधर। कमलायां च तत्तुल्यं न च किंचिन्मयि प्रभो ॥२३॥
गङ्गायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चापि सुसंमता। क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥२४॥
किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च सांप्रतम्। निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमवञ्चिता ॥२५॥
त्वां सर्वेशं सत्त्वरूपं ये वदन्ति मनीषिणः। ते मूर्खा न वेदज्ञा न जानन्ति मतिं तव ॥२६॥
सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम्। मनसा तु समालोच्य स जगाम बहिः सभाम् ॥२७॥
गते नारायणे गङ्गामवोचन्निर्भयं रुषा। वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुःसहम् ॥२८॥
हे निर्लज्जे सकामे त्वं स्वामिगर्वं करोषि किम्। अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि ॥२९॥
मानहानिं करिष्यामि तवाद्य हरिसंनिधौ। किं करिष्यति ते कान्तो मम वै कान्तवल्लभे ॥३०॥
इत्येवमुक्त्वा गङ्गाया जिघृक्षं केशमुद्यताम्। [1]वारयामास तां पद्मा मध्यदेशस्थिता सती ॥३१॥

कर के सरस्वती ने, जो कोप के वेग से काँप रही थीं और जिनका अधरोष्ठ निरन्तर फड़क रहा था, गंगा और पति विष्णु से कहा ॥२१॥

सरस्वती बोलीं—जो पति धार्मिक और श्रेष्ठ होता है, उसका अपनी सभी कामिनी स्त्रियों पर समता का भाव रहता है और दुष्ट पति की इससे विपरीत बुद्धि रहती है ॥२२॥ गदाधर! प्रभो! मैं जानती हूँ कि—तुम्हारा प्रेम गंगा में अधिक है, इसी से उसका सौभाग्य अधिक है और लक्ष्मी में भी तुम्हारा प्रेम उसी के समान है, किन्तु मुझमें तुम्हारा कुछ भी प्रेम नहीं है ॥२३॥ गंगा का प्रेम लक्ष्मी से भी है। इसीलिए लक्ष्मी ने इस विरुद्धाचरण को भी क्षमा कर दिया है ॥२४॥ और मैं दुर्भगा (अभागिनी) हूँ, अतः अब इस (अभागे) जीवन को रख कर क्या करूँगी? क्योंकि जो स्त्री अपने पति के प्रेम से वंचित है, उसका जीवन व्यर्थ है ॥२५॥ और तुम्हें (विष्णु को) जो बुद्धिमान् लोग सर्वाधीश्वर तथा सत्त्व रूप कहते हैं, वे मूर्ख न तो वेद ही जानते हैं और न तुम्हारे विवेक को ही जानते हैं ॥२६॥

सरस्वती की ऐसी बातें सुनकर और उन्हें अत्यन्त क्रुद्ध देखकर विष्णु ने मन में कुछ विचार किया और अनन्तर वे उस सभा से उठकर बाहर चले गये ॥२७॥ नारायण के बाहर चले जाने पर वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ने निर्भय होकर क्रोध से अत्यन्त कर्णकटु वचन गंगा से कहने लगीं—'निर्लज्जे, कामातुरे! क्या तू स्वामी का गर्व करती है? क्या तू अधिक पति-सौभाग्य जनाना चाहती है ॥२८-२९॥ विष्णु के निकट ही आज मैं तेरी मानहानि करूँगी। क्योंकि तू पति की बड़ी प्यारी है न। देखती हूँ तेरा पति मेरा क्या कर लेता है ॥३०॥ इतना कहकर सरस्वती ने गंगा का केश-पाश पकड़ना चाहा किन्तु लक्ष्मी ने दोनों के बीच में खड़ी होकर उन्हें ऐसा करने से रोक दिया ॥३१॥ अनन्तर महाकोप करने वाली सती सरस्वती ने पद्मा (लक्ष्मी) को

---

१ क.० त्वा कारयामा० ।

शशाप वाणी तां पद्मां महाकोपवती सती। वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥३२॥
विपरीतं यतो दृष्ट्वा किंचिन्नो वक्तुमर्हसि। संतिष्ठसि सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित् ॥३३॥
शापं श्रुत्वा च सा देवी न शशाप चुकोप न। तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च ॥३४॥
अत्युद्धतां च तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरितानना। उवाच गङ्गा तां देवीं पद्मां पद्मविलोचना ॥३५॥

गङ्गोवाच

त्वमुत्सृज महोग्रां तां पद्मे किं मे करिष्यति। वाग्दुष्टा वागधिष्ठात्री देवीयं कलहप्रिया ॥३६॥
यावती योग्यताऽस्याश्च यावती शक्तिरेव वा। तया करोतु वादं च मया सार्धं सुदुर्मुखा ॥३७॥
स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमर्हतु। जानन्तु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति ॥३८॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति। सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वामशपद्रुषा ॥३९॥
अधोमर्त्यं सा प्रयातु सन्ति यत्रैव पापिनः। कलौ तेषां च पापांशं लभिष्यति न संशयः ॥४०॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती। त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि ॥४१॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवानाजगाम ह। चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ॥४२॥
सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि। बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम् ॥४३॥
श्रुत्वा रहस्यं तासां च शापस्य कलहस्य च। उवाच दुःखितास्ताश्च वाक्यं सामयिकं विभुः ॥४४॥

भी शाप दे दिया—'तू वृक्ष और नदी का रूप धारण करेगी, इसमें संशय नहीं ॥३२॥ क्योंकि विपरीत आचरण देख करके भी तू सभा के मध्य वृक्ष और नदी की भाँति खड़ी रही कुछ बोली नहीं ॥३३॥ इस प्रकार का शाप सुनकर भी कमला ने सरस्वती को न तो शाप ही दिया और न क्रोध ही किया। केवल सरस्वती का हाथ पकड़े उसी स्थान पर दुःख का अनुभव करती हुई वे खड़ी रह गयीं ॥३४॥ क्रोध से तमतमाये हुए मुख वाली अत्यन्त उद्धत सरस्वती को देख कर कमलनेत्रा गंगा ने कमला देवी से कहा ॥३५॥

गंगा बोलीं—भद्रे ! महाकोप करने वाली इस दुष्टा को तुम छोड़ दो। यह मेरा क्या कर लेगी। वाणी की अधिष्ठात्री देवी होती हुई भी अत्यन्त झगड़ालू है ॥३६॥ इसलिए इसकी जितनी योग्यता और जितनी शक्ति है उसके अनुसार यह कटुभाषिणी मुझसे वाद-विवाद कर ले ॥३७॥ आज यह मेरी और अपनी शक्ति की परीक्षा कर ले। सभी लोग हम दोनों के प्रभाव और पराक्रम को जान लें ॥३८॥ इतना कहकर गंगा देवी ने सरस्वती को शाप दिया कि—'जिसने रोष भरे शब्दों से लक्ष्मी को शाप दिया है, वह स्वयं भी नदी-रूप में हो जाय और नीचे मर्त्यलोक में जहाँ पापियों का समूह निवास करता है, वहाँ रहे तथा कलियुग में उनके पापांशों को भी प्राप्त करे, इसमें संशय नहीं ॥३९-४०॥ इतनी बात सुनकर सरस्वती ने भी गंगा को शाप दिया कि—तू भी पृथ्वी पर जायगी और पापियों के पाप को प्राप्त करेगी ॥४१॥ इसी बीच चतुर्भुज भगवान् विष्णु अपने चतुर्भुज पार्षदों समेत वहाँ आ गये ॥४२॥ उन्होंने सरस्वती का दोनों हाथ पकड़ कर उन्हें अपने वक्षःस्थल से चिपका लिया और उन सर्वज्ञ ने अपने पुरातन ज्ञान द्वारा उन्हें भलीभाँति समझाया ॥४३॥ विभु विष्णु ने उन स्त्रियों के शाप-कलह का रहस्य सुनकर दुःखानुभव करने वाली उन पत्नियों से समयोचित वाक्य कहा ॥४४॥

श्रीभगवानुवाच

लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे। अयोनिसंभवा भूमौ तस्य कन्या भविष्यसि ॥४५॥
तत्रैव देवदोषेण वृक्षत्वं च लभिष्यसि। मदंशस्यासुरस्यैव शङ्खचूडस्य कामिनी ॥४६॥
भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसि न संशयः। त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते ॥४७॥
कलया च सरिद्भूत्वा शीघ्रं गच्छ वरानने। भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव ॥४८॥
गङ्गे यास्यसि चांशेन पश्चात्त्वं विश्वपावनी। भारतं भारतीशापात्पापदाहाय देहिनाम् ॥४९॥
भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुदुष्करात्। नाम्ना भागीरथी पूता भविष्यसि महीतले ॥५०॥
मदंशस्य समुद्रस्य जाया जाये ममाऽऽज्ञया। मत्कलांशस्य भूपस्य शन्तनोश्च सुरेश्वरि ॥५१॥
गङ्गाशापेन कलया भारतं गच्छ भारति। कलहस्य फलं भुङ्क्ष्व सपत्नीभ्यां सहाच्युते ॥५२॥
स्वयं च ब्रह्मसदनं ब्रह्मणः कामिनी भव। गङ्गा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैव तिष्ठतु ॥५३॥
शान्ता च क्रोधरहिता मद्भक्ता[1] मत्स्वरूपिणी। महासाध्वी महाभागा सुशीला धर्मचारिणी ॥५४॥
यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः। शान्तरूपाः सुशीलाश्च प्रतिविश्वेषु योषितः ॥५५॥
तिस्रो भार्यास्त्रयः शालास्त्रयो भृत्याश्च बान्धवाः। ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मङ्गलप्रदाः ॥५६॥

श्री भगवान् बोले—हे शुभमूर्ति लक्ष्मि! तुम पृथ्वी पर जाकर धर्मध्वज के घर अपने अंश से अयोनिजा (योनि से उत्पन्न न होने वाली) कन्या होकर प्रकट होओ। वहाँ मेरे अंश से उत्पन्न होनेवाले शंखचूड़ की पत्नी बनकर दैववश वहाँ वृक्ष का रूप भी धारण करोगी ॥४५-४६॥ पश्चात् यहाँ आकर मेरी पत्नी हो जाओगी और भारत में तुम्हारा त्रैलोक्यपावन 'तुलसी' नाम पड़ेगा ॥४७॥ हे सुमुखी! सरस्वती के शाप वश तुम भारत में शीघ्र जाओ। वहाँ अंशमात्र से नदी का रूप धारण करने पर तुम्हारा नाम पद्मावती होगा। गंगे! इसके पश्चात् तुम भी भारती के शाप वश भारत में पापियों के पाप विनाशार्थ अपने अंश से विश्वपावनी नदी होकर रहो ॥४७-४९॥ भगीरथ की दुष्कर तपस्या के कारण तुम्हें वहाँ जाना पड़ेगा। भूतल पर सब लोग तुम्हें भागीरथी कहेंगे ॥५०॥ हे सुरेश्वरि! मेरे अंश से उत्पन्न समुद्र और मेरे ही अंश से उत्पन्न होने वाले राजा शान्तनु की भी पत्नी तुम मेरी आज्ञा से बनना ॥५१॥ हे भारति! गंगा के शाप से तुम भी अपने अंश से भारत में जाकर अपनी सपत्नियों के साथ कलह करने का फल भोगो। फिर स्वयं ब्रह्मा के घर जाकर उनकी पत्नी बनो तथा स्वयं गंगा भी शिव जी के यहाँ चली जाय। यहाँ केवल लक्ष्मी ही रहे ॥५२॥ क्योंकि यह शान्त, क्रोधहीन, मेरी भक्त, मेरे स्वरूप को धारण करने वाली महापतिव्रता, पुण्यात्मा, सुशीला और धर्मचारिणी है ॥५४॥ प्रत्येक विश्व में इसके अंश की कला से उत्पन्न होकर स्त्रियाँ धार्मिक, पतिव्रता, शान्तमूर्ति और सुशील होती हैं ॥५५॥ क्योंकि तीन स्त्रियों, तीन घरों, तीन सेवकों और तीन बन्धुओं का होना निश्चित रूप से वेदविरुद्ध है। ये मंगलप्रद नहीं होते ॥५६॥ जिसके घर में स्त्री, पुरुष की भाँति (लोक-व्यवहार करती) रहती हैं और पुरुष स्त्री के वश में रहता है, उसका जन्म

---

१ क. ०क्ता[illegible]सत्स्वरू०।

स्त्री पुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान्। निष्फलं जन्म वै तेषामशुभं च पदे पदे ॥५७॥
मुखदुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया। अरण्यं तेन गन्तव्यं महारण्यं गृहाद्वरम् ॥५८॥
जलानां[१] च स्थलानां च फलानां प्राप्तिरेव च। सततं सुलभा तत्र न तेषां तद्गृहेऽपि च ॥५९॥
वरमग्नौ स्थितिर्हिंस्रजन्तूनां संनिधौ सुखम्। ततोऽपि दुःखं पुंसां च दुष्टस्त्रीसंनिधौ ध्रुवम् ॥६०॥
व्याधिज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने। दुष्टस्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते ॥६१॥
पुंसश्च स्त्रीजितस्येह जीवितं निष्फलं ध्रुवम्। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥६२॥
स निन्दितोऽत्र सर्वत्र परत्र नरकं व्रजेत्। यशः कीर्तिविहीनो यो जीवन्नपि मृतो हि सः ॥६३॥
बह्वीनां च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसी स्थितिः। एकभार्यः सुखी नैव बहुभार्यः कदाचन ॥६४॥
गच्छ गङ्गे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वति। अत्र तिष्ठतु मद्गेहे[२] सुशीला कमलालया ॥६५॥
सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता। इह स्वर्गसुखं तस्य धर्ममोक्षौ परत्र च ॥६६॥
पतिव्रता यस्य पत्नी स च मुक्तः शुचिः सुखी। जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखी दुःशीलापतिरेव यः ॥६७॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम च नारद। अत्युच्चै रुरुदुर्देव्यः समालिङ्ग्य परस्परम् ॥६८॥

निष्फल है और पद-पद पर उसका अशुभ होता है ॥५७॥ जिसकी स्त्री मुख की कटुभाषिणी, पुंश्चली एव झगड़ालू है, उसे जंगल में रहना चाहिए, क्योंकि उसके लिए घर की अपेक्षा महावन ही अच्छा है ॥५८॥ कारण वहाँ उसे जल, स्थल और फल तो मिल ही जाते हैं। ये फल-जल आदि जंगल में निरन्तर सुलभ रहते हैं, घर पर नहीं मिल सकते ॥५९॥ अग्नि में कूदना अच्छा है, हिंसक जानवरों के समीप रहना सुखकर है, किन्तु पुरुषों के लिए दुष्ट स्त्री के साथ रहना उससे भी अधिक दुःखप्रद होता है, यह निश्चित है। ६०॥ हे सुमुखी ! व्याधि की ज्वाला (ताप) तथा विष की ज्वाला (तीक्ष्णता) अच्छी है, किन्तु दुष्ट स्त्रियों के मुख की ज्वाला (वचन-कटुता) मरण से भी अधिक दुःखप्रद होती है ॥६१॥ इस लोक में स्त्री के अधीन रहने वाले पुरुषों का जीवन वस्तुतः निष्फल है। वह दिन में जो (उत्तम) कार्य करता है, उसका भी फलभागी वह नहीं होता ॥६२॥ वह इस लोक में सर्वत्र निन्दा का पात्र बनता है, और मरने पर नरक में जाता है। अतः यश एवं कीर्ति से रहित होने पर वह जीवित रहते हुए भी मृतक है ॥६३॥ अनेक सपत्नियों का एक स्थान पर रहना श्रेयस्कर नहीं होता है। और एक ही स्त्री का पति बनने से सुख प्राप्त होता है अनेक स्त्रियों के पति बनने से कभी नहीं ॥६४॥ अतः हे गंगे ! तुम शिव के यहाँ जाओ और हे सरस्वति ! तुम ब्रह्मा के यहाँ चली जाओ। यहाँ केवल सुशील लक्ष्मी ही मेरे घर में रहे ॥६५॥ क्योंकि जिसकी पत्नी सरल स्वभाव वाली, सुशीला और पतिव्रता होती है, उसे स्वर्गसुख यहीं प्राप्त होता है परलोक में उसे केवल धर्म-मोक्ष प्राप्त होते हैं ॥६६॥ जिसकी पत्नी पतिव्रता है वह (सब दुःखों से) मुक्त, पवित्र और सुखी रहता है। और दुःशीला (बुरे स्वभाव वाली) स्त्री का पति जीवित रहते हुए भी मृतक, अपवित्र और दुःखी रहता है ॥६७॥ नारद ! इतना कह कर जगत् के स्वामी (विष्णु) चुप हो गए। उधर देवियाँ परस्पर एक-दूसरी को पकड़-पकड़

---

१ ख. जनानां च स्थलानां च पुराणां प्रा०। २ ख. मद्देहे।

ताश्च सर्वाः समालोच्य क्रमेणोचुः सदीश्वरम्। कम्पिताः साश्रुनेत्राश्च शोकेन च भयेन च ॥६९॥

सरस्वत्युवाच

प्रायश्चित्तं देहि नाथ दुष्टायां जन्मशोधकम्। सत्स्वामिना परित्यक्ताः कुत्र जीवन्ति काः स्त्रियः ॥७०॥
देहत्यागं करिष्यामि ध्रुवं योगेन भारते। अत्युच्चतो निपतनं प्राप्तुमर्हति निश्चितम् ॥७१॥

गङ्गोवाच

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते। देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ ॥७२॥
निर्दोषकामिनीत्यागं कुरुते यो जनो भवे। स याति नरकं कल्पं किं ते सर्वेश्वरस्य वा ॥७३॥

लक्ष्मीरुवाच

नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव। प्रसादं कुरु[1] चास्मभ्यं सदीशस्य क्षमा वरा ॥७४॥
भारतं भारतीशापाद्यास्यामि कलया यदि। कतिकालं स्थितिस्तत्र कदा द्रक्ष्यामि ते पदम् ॥७५॥
दास्यन्ति पापिनः पापं मह्यं स्नानावगाहनात्। केन तस्माद्विमुक्ताऽहमागमिष्यामि ते पदम् ॥७६॥
कलया तुलसीरूपा धर्मध्वजसुता सती। भूत्वा कदा लभिष्यामि त्वत्पादाम्बुजमच्युत ॥७७॥

कर ऊँचे स्वर से रोने लगीं ॥६८॥ अनन्तर भय से कम्पित, आँखों में आँसू भरे और शोक से खिन्न (हीन-दीन) होती हुई उन स्त्रियों ने क्रमशः महाप्रभु (विष्णु) से कहना आरम्भ किया ॥६९॥

सरस्वती बोलीं—हे नाथ! मुझ दुष्टा स्त्री का जन्म पवित्र करने वाला प्रायश्चित्त बता दें। क्योंकि उत्तम स्वभाव वाले पति द्वारा त्यागी गई कौन स्त्रियाँ कहाँ जीवित रहती हैं? ॥७०॥ अतः भारत में मैं योग द्वारा निश्चित रूप से अपना देह-त्याग करूँगी। क्योंकि अत्यन्त ऊँचाई पर पहुँच जाने के बाद पतन होना निश्चित है ॥७१॥

गंगा बोलीं—हे जगत्पते! किस अपराध से आपने मेरा त्याग किया है? मैं भी शरीर छोड़ दूंगी, जिससे आपको मुझ निर्दोष के वध करने का फल मिले ॥७२॥ क्योंकि संसार में जो पुरुष अपनी निर्दोष स्त्री का त्याग करता है, उसे एक कल्प तक नरक-वास करना पड़ता है। चाहे वह सर्वेश्वर तुम्हीं क्यों न हो ॥७३॥

लक्ष्मी बोलीं—हे नाथ! आपका स्वरूप सत्त्व गुण प्रधान है। आश्चर्य है, आपको कोप कैसे हो गया? आप हम लोगों पर प्रसन्न हो जायँ; क्योंकि उत्तम स्वभाव वाले स्वामी का क्षमा करना ही उत्तम गुण है ॥७४॥ और यदि सरस्वती के शाप देने के कारण मैं अपने अंश से भारत में जाऊँगी, तो कितने दिन वहाँ रह कर पुनः आपके चरणों का दर्शन करूँगी ॥७५॥ वहाँ पापी लोग (मुझमें) स्नान कर के मुझे अपना पाप दे जायँगे तब फिर किसके द्वारा उस पाप से मुक्त होकर मैं यहाँ आपके स्थान पर आ सकूंगी? ॥७६॥ हे अच्युत! कला रूप से धर्मध्वज की तुलसी नामक कन्या होकर मैं कब आपका चरण-कमल प्राप्त करूँगी? ॥७७॥ हे कृपानिधे! मैं वृक्ष रूप एवं उसकी

---

१ क. ख भार्याभ्यः स०।

वृक्षरूपा भविष्यामि तदधिष्ठातृदेवता । मामुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥७८॥
गङ्गा सरस्वतीशापाद्यदि यास्यति भारतम् । शापेन मुक्ता पापाच्च कदा त्वां वा लभिष्यति ॥७९॥
गङ्गाशापेन सा वाणी यदि यास्यति भारतम् । कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं तव ॥८०॥
तां वाणीं ब्रह्मसदनं गङ्गां वा शिवमन्दिरम् । गन्तुं वदसि हे नाथ तत्क्षमस्व च मद्वचः ॥८१॥
इत्युक्त्वा कमला कान्तपदं धृत्वा ननाम च । स्वकेशैर्वेष्टयित्वा च रुरोद च पुनः पुनः ॥८२॥
उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि । ईषद्धासः प्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः ॥८३॥

नारायण उवाच

त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि । समतां च करिष्यामि शृणु तत्क्रममेव च ॥८४॥
भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारतम् । अर्धांशा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥८५॥
भगीरथेन नीता सा गङ्गा यास्यति भारतम् । पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे ॥८६॥
तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यति दुर्लभम् । ततः स्वभावतः पूताऽप्यतिपूता भविष्यति ॥८७॥
कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते कमलोद्भवे । पद्मावती सरिद्रूपा तुलसी वृक्षरूपिणी ॥८८॥
कलौ पञ्चसहस्रे च गते वर्षे च मोक्षणम् । युष्माकं सरितां भूयो मद्गृहे चाऽऽगमिष्यथ ॥८९॥

अधिष्ठात्री देवता होकर वहाँ रहूँगी, तो आप मेरा उद्धार कब करेंगे, यह बताने की कृपा करें ॥७८॥ सरस्वती के शापवश यदि गंगा भारत में जायगी, तो वह कब शाप-पाप से मुक्त हो कर आपको प्राप्त करेगी ॥७९॥ एवं गंगा के शाप से यदि सरस्वती भारत जायगी, तो वह भी कब शाप से मुक्त हो कर आपके चरणों में आएगी ? ॥८०॥ हे नाथ ! जो आप सरस्वती को ब्रह्मा के यहाँ तथा गंगा को शिव के यहाँ जाने के लिए कह रहे हैं, उसे क्षमा करें ॥८१॥ इतना कह कर लक्ष्मी ने विष्णु के चरण पकड़ लिए, उन्हें प्रणाम किया और अपने केसों से भगवान् के चरणों को आवेष्टित कर के बार-बार रोने लगीं ॥८२॥ भक्तों पर अनुग्रह करने वाले कमलनाभ भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी को अपने वक्षःस्थल से लगा लिया एवं प्रसन्न मुख से मुसकराते हुए कहा ॥८३॥

नारायण बोले—हे सुरेश्वरि ! मैं तुम्हारी बातें स्वीकार कर रहा हूँ और अपने वचन की भी रक्षा करूँगा । साथ ही तुम तीनों में समता कर दूंगा, अतः सुनो ॥८४॥ सरस्वती कलामात्र से नदी बन कर भारत चली जायें, अर्धांश से ब्रह्मा के घर जायँ और पूर्ण अंश से स्वयं मेरे पास रहें ॥८५॥ ऐसे ही गंगा भगीरथ के सत्प्रयत्न से अपने कलांश से त्रिलोकी को पवित्र करने के लिए भारत में जायँ और स्वयं पूर्ण अंश से मेरे भवन में रहें ॥८६॥ वहाँ चन्द्र-मौलि (शिव) का वह दुर्लभ मस्तक (शिर) भी उन्हें प्राप्त हो जायेगा इससे स्वभावतः पवित्र होती हुई भी गंगा और पवित्र हो जायेंगी ॥८७॥ हे कमलोद्भवे ! तुम भी अपने अशांश मात्र से भारत में पद्मावती नामक नदी और तुलसी नामक वृक्ष होकर रहो ॥८८॥ कलियुग में पाँच सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर तुम लोग नदी भाव से मुक्त हो जाओगी । फिर मेरे यहाँ लौट आओगी ॥८९॥ हे पद्मे ! देहधारियों को सम्पत्ति की प्राप्ति में विपत्ति कारण

संपदां हेतुभूता च विपत्तिः[1] सर्वदेहिनाम्। विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मे भवेद्ध्रुवे ॥९०॥
मन्मन्त्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात्। युष्माकं मोक्षणं पापात्पापिस्पर्शनहेतुकात् ॥९१॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सन्त्यसंख्यानि सुन्दरि। भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९२॥
मन्त्रमन्त्रोपासका भक्ता भ्रमन्ते भारते सति। पूतं कर्तुं भारतं च सुपवित्रां वसुंधराम् ॥९३॥
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च। तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद्ध्रुवम् ॥९४॥
स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः। जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९५॥
एकादशीविहीनश्च संध्याहीनो[2]ऽपि नास्तिकः। नरघाती भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९६॥
असिजीवी मषीजीवी धावकः शूद्रयाजकः। वृषवाहो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९७॥
विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः। न्यासहारी भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९८॥
ऋणग्रस्तो वार्धुषिको जारजः पुंश्चलीपतिः। पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥९९॥
शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः। अदीक्षितो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१००॥
अश्वत्थघातकश्चैव मद्भक्तानां च निन्दकः। अनिवेदितभोजी च पूतो मद्भक्तदर्शनात् ॥१०१॥
मातरं पितरं भार्यां भ्रातरं तनयं सुताम्। गुरोः कुलं च भगिनीं वंशहीनं च बान्धवम् ॥१०२॥

होती है, क्योंकि इस संसार में बिना विपत्ति का सामना किए किसी को भी गौरव प्राप्त नहीं होता ॥९०॥ मेरे मन्त्रों की उपासना करने वाले सज्जनों के स्नान करने से तुम पापियों के स्पर्श जन्य पाप से छुटकारा पा जाओगी ॥९१॥ सुन्दरी! भारत में जितने असंख्य तीर्थ हैं, वे सभी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से पवित्र हो जायँगे ॥९२॥ साध्वी! मेरे मन्त्रों के उपासक भक्त गण भारत देश और पृथ्वी को पवित्र करने के लिए भारत में भ्रमण करते रहते हैं ॥९३॥ मेरे भक्त लोग जहाँ ठहरते हैं और जहाँ चरण प्रक्षालन करते हैं, वह स्थान निश्चित रूप से महातीर्थ होकर अत्यन्त पवित्र हो जाता है ॥९४॥ स्त्री हत्या, गोहत्या और ब्रह्महत्या करने वाला, कृतघ्न एवं गुरुपत्नीगामी भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन करने से पवित्र होकर जीवन्मुक्त हो जाता है ॥९५॥ एकादशी व्रत विहीन, संध्या न करने वाला, नास्तिक और मनुष्यघाती भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से पवित्र हो जाते हैं ॥९६॥ अस्त्र-शस्त्रों से जीविका चलाने वाला, मुनीमी से जीविका चलाने वाला, दौत्य कर्म से जीविका चलाने वाला, शूद्रों को पुजाने वाला तथा बैल जोतने वाला ब्राह्मण भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से पवित्र हो जाते हैं ॥९७॥ विश्वासघात करने वाला, मित्र की हत्या करने वाला, झूठी गवाही देने वाला और धरोहर को हड़प जाने वाला व्यक्ति भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से शुद्ध हो जाता है, ॥९८॥ ऋणग्रस्त, सूदखोर, वर्णसंकर, पुंश्चली स्त्री का पति और पुंश्चली स्त्री का पुत्र भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन करने से शुद्ध हो जाता है ॥९९॥ शूद्रों का भण्डारी, मन्दिर का पुजारी, गाँव-गाँव में यज्ञ कराने वाला और दीक्षा रहित मनुष्य मेरे भक्तों के दर्शन- स्पर्शन से शुद्ध हो जाता है ॥१००॥ पीपल के पेड़ को काटने वाला, मेरे भक्तों का निन्दक तथा बिना निमत्रण के भोजन करने वाला भी मेरे भक्तों के दर्शन से शुद्ध हो जाता है ॥१०१॥ नारद! माता-पिता, स्त्री, भ्राता, पुत्री, गुरु के कुल, भगिनी, वंशहीन बन्धु और सास-ससुर की सेवा न करने वाला महापातकी भी मेरे भक्तों के

१ क. ०त्तिः कापि दे०। २ क. ०नो ऽप्यनाश्रमी।

श्वश्रूं च श्वशुरं चैव यो न पुष्णाति नारद। स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१०३॥
देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः। लाक्षालोहरसानां च विक्रेता[1] दुहितुस्तथा ॥१०४॥
महापातकिनश्चेते शूद्राणां शवदाहकाः। भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१०५॥

लक्ष्मीरुवाच

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकारक। येषां संदर्शनस्पर्शात्सद्यःपूता नराधमाः ॥१०६॥
हरिभक्तिविहीनाश्च महाहंकारसंयुताः। स्वप्रशंसारता धूर्ताः[2] शठा वै साधुनिन्दकाः ॥१०७॥
पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात्। येषां च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥१०८॥
येषां संदर्शनं स्पर्शं देवा वाञ्छन्ति भारते। सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ॥१०९॥
नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्युरुकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो ॥११०॥

सौतिरुवाच

महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः। निगूढतत्त्वं कथितुमृषिश्रेष्ठोपचक्रमे ॥१११॥

श्रीनारायण उवाच

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः। पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भुक्तिमुक्तिदम् ॥११२॥

दर्शन-स्पर्शन से पवित्र हो जाता है ॥१०२-१०३॥ देवताओं और ब्राह्मणों के द्रव्य का अपहरण करने वाला तथा लाख (लाह), लोह, रस (भस्म) एवं कन्या का विक्रेता और शूद्रों का शव (मुर्दा) जलाने वाले महापातकी भी भी मेरे भक्तों के दर्शन-स्पर्शन से शुद्ध हो जाते हैं ॥१०५॥

लक्ष्मी बोलीं—हे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले! आप उन भक्तों के लक्षण बताने की कृपा करें, जिनके दर्शन-स्पर्शन से अधम मनुष्य तुरन्त पवित्र हो जाते हैं ॥१०६॥ क्योंकि विष्णु की भक्ति से रहित, महान् अहंकारी, अपनी प्रशंसा में निमग्न रहने वाले, धूर्त, शठ, साधुओं की निन्दा करने वाले भी आपके भक्तों के दर्शन और स्पर्श से सद्यः पवित्र हो जाते हैं ॥१०७॥ उन भक्तों के नहाने-धोने से समस्त तीर्थ पवित्र होते हैं जिनके चरण-रज और पादोदक से यह पृथ्वी पवित्र हो जाती है ॥१०८॥ भारत में जिनके दर्शन-स्पर्शन के लिए देवता भी लालायित रहते हैं, उन सब वैष्णवों का समागम सभी प्राणियों के लिए परम लाभप्रद है ॥१०९॥ जलमयतीर्थ ही तीर्थ नहीं है और न मृण्मय एवं प्रस्तरमय देवता ही देवता हैं; क्योंकि वे दीर्घकाल तक सेवा करने पर पवित्र करते हैं। अहो! साक्षात् देवता तो विष्णु भक्तों को मानना चाहिए जो क्षण भर में पवित्र कर देते हैं ॥११०॥

सौति बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! महालक्ष्मी की बातें सुन कर लक्ष्मीकान्त विष्णु ने मन्द-मन्द हँसते हुए अत्यन्त गूढ़ तत्त्व को बताना आरम्भ किया ॥१११॥

श्री नारायण बोले—हे लक्ष्मि! भक्तों का लक्षण श्रुतियों और पुराणों में गूढ़ बताया गया है, जो पुण्य रूप, पापनाशक, सुखप्रद और भुक्ति-मुक्ति का प्रदायक है ॥११२॥ यह सारभूत होने के नाते अत्यन्त गोपनीय है,

---

१ क. ०ता लवणस्य च। २ क. ० ताः सगर्वाः सा०।

सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च। त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥११३॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशेद्वरः। वदन्ति वेदवेदाङ्गात्तं पवित्रं नरोत्तमम् ॥११४॥
पुरुषाणां शतं पूर्वं पूतं तज्जन्ममात्रतः। स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिं प्राप्नोति तत्क्षणात् ॥११५॥
यैः कैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धं येषु च जन्तुषु। जीवन्मुक्तास्ते च पूता यान्ति काले हरेः पदम् ॥११६॥
मद्भक्तियुक्तो मत्पूजानियुक्तो मद्गुणान्वितः। मद्गुणश्लाघनीयश्च मन्निविष्टश्च संततम् ॥११७॥
मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः। सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृतिरेव च ॥११८॥
न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने ॥११९॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च देवत्वं च सुदुर्लभम्। स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि नहि वाञ्छति ॥१२०॥
ब्रह्माण्डानि[1] विनश्यन्ति देवा ब्रह्मादयस्तथा। कल्याणभक्तियुक्तश्च मद्भक्तो न प्रणश्यति ॥१२१॥
भ्रमन्ति भारते भक्ता लब्ध्वा जन्म सुदुर्लभम्। तेऽपि यान्ति महीं पूतां कृत्वा तीर्थं ममाऽऽलयम् ॥१२२॥
इत्येतत्कथितं सर्वं कुरु पद्मे यथोचितम्। तदाज्ञाताश्च ताश्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने ॥१२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सरस्वत्युपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

दुष्टों से इसकी चर्चा कभी नहीं करनी चाहिए। किन्तु तुम पवित्र एवं प्राणसमान हो, इसीलिए तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥११३॥ भगवान् विष्णु का मन्त्र गुरु के मुख से निकलकर जिसके कर्ण विवर में प्रविष्ट होता है, वह वेदवेदांग से भी पवित्र और नरोत्तम कहा जाता है ॥११४॥ उसके जन्ममात्र से उसके सौ पूर्वज शुद्ध हो जाते हैं, और वे स्वर्ग नरक में कहीं भी हों, उसी क्षण उनकी मुक्ति हो जाती है ॥११५॥ यदि उन पूर्वजों में से किन्हीं का कहीं जन्म हो गया हो तो उन्होंने जिस योनि में जन्म पाया है, वहीं उनमें जीवन्मुक्तता आ जाती है और समयानुसार वे परम धाम में चले जाते हैं ॥११६॥ मुझमें भक्ति रखने वाला मनुष्य मेरी पूजा में निरन्तर नियुक्त तथा मेरे गुणानुवाद में तल्लीन रह कर मेरे गुणों की ही प्रशंसा करता है और सतत मेरा ध्यान करता रहता है ॥११७॥ मेरे गुणों को सुनते ही वह आनन्दविभोर होकर पुलकित हो जाता है, और उसकी वाणी गद्गद हो जाती है। उसकी आँखों में आँसू भर आते और वह अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है ॥११८॥ वह सुख या सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्ति नहीं चाहता है, ब्रह्मत्व और अमरत्व भी नहीं चाहता, केवल मेरी सेवा ही करना चाहता है ॥११९॥ इसी प्रकार इन्द्रत्व, मनुत्व, अत्यन्त दुर्लभ देवत्व और स्वर्गराज्यादि के भोग को वह स्वप्न में भी नहीं चाहता है ॥१२०॥ प्रत्येक ब्रह्माण्ड का विनाश हो जाता है एवं ब्रह्मादि देवगण विनष्ट हो जाते हैं; किन्तु मेरी कल्याणकारिणी भक्ति से युक्त मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता है ॥१२१॥ इस प्रकार भारत में अत्यन्त दुर्लभ जन्म ग्रहण कर वे भक्तगण चारों ओर भ्रमण किया करते हैं और पृथिवी तथा तीर्थों को पवित्र करके अन्त में मेरे धाम में पहुँच जाते हैं ॥१२२॥ पद्मे! इस प्रकार मैंने तुम्हें सब सुना दिया। अब तुम्हें जो उचित मालूम पड़े वह करो। अनन्तर भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर के उन्होंने वैसाही किया और भगवान् विष्णु अपने सुखासन पर विराजमान हो गए ॥१२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में सरस्वती का उपाख्यान नामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

---

१ क. ०ण्डादीनि न०

अथ सप्तमोऽध्यायः

नारायण उवाच

पुण्यक्षेत्रे ह्याजगाम भारते सा सरस्वती। गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदम्॥१॥
भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया। वागधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी च कीर्तिता॥२॥
सर्वं विश्वं परिव्याप्य स्रोतस्येव हि दृश्यते। हरिः सरःसु तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती॥३॥
सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपातिपावनी। पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी॥४॥
पश्चाद्भगीरथानीता महीं भागीरथी शुभा। समाजगाम कलया वाणीशापेन नारद॥५॥
तत्रैव समये तां च दधार शिरसा शिवः। वेगं सोढुमशक्तायाा भुवः प्रार्थनया विभुः॥६॥
पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी। भारतं भारती शापात्स्वयं तस्थौ हरेः पदम्॥७॥
ततोऽन्यया सा कलया चालभज्जन्म भारते। धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च॥८॥
पुरा सरस्वतीशापात्तत्पश्चाद्धरिशापतः। बभूव वृक्षरूपा सा कलया [1]विश्वपावनी॥९॥

अध्याय ७

कलियुग-चरित्र, कालमान तथा गोलोक की श्रीकृष्ण-लीला का वर्णन

नारायण बोले—गंगा के शाप के कारण सरस्वती अपनी एक कला से पुण्य क्षेत्र भारत में पधारीं और पूर्ण अंश से स्वयं भगवान् के निकट रहीं॥१॥ सरस्वती भारत में जाने के कारण भारती ब्रह्मा की प्रिया होने के कारण ब्राह्मी और वाणी की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण वाणी नाम से विख्यात हुईं॥२॥ विष्णु सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त रहते हुए भी सागर के जल-स्रोत में शयन करते देखे जाते हैं। इस प्रकार सरस् (सरोवर या जलस्रोत) से सम्पर्क होने के कारण विष्णु-प्रिया वाणी सरस्वती नाम से विख्यात हुईं॥३॥ नदी रूप में पधार करके सरस्वती परम पावन तीर्थ बन गईं, जो पापियों के पाप रूपी ईंधन को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्निरूपा हैं॥४॥ नारद! तत्पश्चात् सरस्वती के शाप वश गंगा भी अपनी कला से भगीरथ के द्वारा पृथिवी पर पधारीं। इसी से उनका शुभ नाम 'भागीरथी' पड़ा॥५॥ उसी आगमन-काल में शिव ने उन्हें अपने शिर पर धारण किया था; क्योंकि उनकी यात्रा के वेग को सहन न कर सकने के कारण पृथ्वी ने विभु (शिव) से प्रार्थना की थी॥६॥ पद्मा (लक्ष्मी) भी सरस्वती के शाप वश अपनी एक कला से भारत में जाकर 'पद्मावती' नामक नदी हुईं और स्वयं संपूर्ण अंश से भगवान् के समीप ही रहीं॥७॥ तदनन्तर वे अपनी एक दूसरी कला से भारत में धर्मध्वज के यहाँ पुत्री रूप में प्रकट हुईं। उस समय उनका नाम तुलसी पड़ा॥८॥ पहले सरस्वती के शाप से और पश्चात् भगवान् के शाप से वह विश्वपावनी लक्ष्मी अपनी कला द्वारा 'वृक्ष' रूप में परिणत हो गयीं॥९॥ भारत में कलि-

---

१ क. ०स्वरूपिणी।

कलौ पञ्चसहस्रं च वर्षं स्थित्वा च भारते। जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम् ॥१०॥
यानि सर्वाणि तीर्थानि काशी वृन्दावनं विना। यास्यन्ति सार्धं ताभिश्च हरेर्वैकुण्ठमाज्ञया ॥११॥
शालग्रामो हरेर्मूर्तिर्जगन्नाथश्च भारतम्। कलेर्दशसहस्रान्ते ययौ त्यक्त्वा हरेः पदम् ॥१२॥
वैष्णवाश्च पुराणानि शङ्खाश्च श्राद्धतर्पणम्। वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१३॥
हरिपूजा हरेर्नाम तत्कीर्तिगुणकीर्तनम्। वेदाङ्गानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१४॥
सन्तश्च[1] सत्यं धर्मश्च वेदाश्च ग्रामदेवताः। व्रतं तपस्याऽनशनं ययुस्तैः सार्धमेव च ॥१५॥
वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकापटचसंयुताः। तुलसीवर्जिता पूजा भविष्यति ततः परम् ॥१६॥
एकादशीविहीनाश्च सर्वे धर्मविवर्जिताः। हरिप्रसङ्गविमुखा भविष्यन्ति ततः परम् ॥१७॥
शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहंकारसंयुताः। चौराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यन्ति ततः परम् ॥१८॥
पुंसां भेदस्तथा स्त्रीणां विवाहो वादनिर्णयः। स्वस्वामिभेदो वस्तूनां न भविष्यत्यतः परम् ॥१९॥
सर्वे जनाः स्त्रीवशाश्च पुंश्चल्यश्च गृहे गृहे। तर्जनैर्भर्त्सनैः शश्वत्स्वामिनं ताडयन्ति च ॥२०॥
गृहेश्वरी च गृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः। चेटी भृत्यासमा वध्वः श्वश्रूश्च श्वशुरस्तथा ॥२१॥
कर्तारो बलिनो गेहे योनिसंबन्धिबान्धवाः। विद्यासंबन्धिभिः सार्धं संभाषाऽपि न विद्यते ॥२२॥

युग के पाँच सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर वे सभी अपने नदी रूपों का त्याग कर श्रीहरि के धाम में चली जायँगी ॥१०॥ काशी और वृन्दावन के अतिरिक्त अन्य सभी तीर्थगण भी भगवान् की आज्ञा से उन लोगों के साथ वैकुण्ठ चले जायँगे ॥११॥ कलि के दशसहस्र वर्ष के अनन्तर भगवान् की शालग्राम मूर्ति और जगन्नाथ जी भारत छोड़कर विष्णुलोक चले जायंगे ॥१२॥ वैष्णवगण, पुराण, शंख, श्राद्ध, तर्पण और वेदोक्त कर्म भी उनके साथ चले जायँगे ॥१३॥ भगवान् की पूजा, भगवान् का नाम, उनके गुणों का कीर्तन, वेद के छह अंग (शिक्षा, कल्प आदि) एवं शास्त्र उनके साथ चले जायँगे ॥१४॥ सन्त, सत्य, धर्म, वेद, ग्राम के देवता, व्रत, तपस्या और उपवास उन के साथ-साथ चले जायँगे ॥१५॥ (अनन्तर सभी लोग) वाममार्गी शास्त्रविरुद्ध आचरण करने वाले होकर झूठ, और कपट से पूर्ण व्यवहार करेंगे। उसके बाद बिना तुलसी के विष्णु की पूजा होगी ॥१६॥ सभी लोग एकादशी व्रत से रहित,, धर्मशून्य तथा हरि की चर्चा से विमुख होंगे ॥१७॥ मनुष्य शठ, क्रूर, दम्भी (पाखण्डी), महाहंकारी चोर एवं हिंसक होंगे ॥१८॥ स्त्री-पुरुषों में (अधिकार या कार्य का) कोई भेद नहीं रहेगा। विवाह-सम्बन्ध उठ जाएगा। वाद (मुकदमे) का (उचित) निर्णय नहीं होगा। अपने या पराये स्वामी का भेद तथा अपनी परायी वस्तुओं का भेद आगे चलकर नहीं रहेगा ॥१९॥ सभी पुरुष स्त्री के अधीन होकर रहेंगे, घर-घर में स्त्रियाँ पुंश्चली (व्यभिचारिणी) होंगी और निरन्तर अपने स्वामियों की तर्जना-भर्त्सना किया करेंगी ॥२०॥ गृहिणी घर की स्वामिनी बनेगी, पुरुष नौकर से भी अधिक अधम समझा जायगा। अन्य स्त्रियाँ नौकरानी की भाँति रहेंगी। उसी भाँति सास-ससुर भी रहेंगे। घर में जो बलवान् होंगे, उन्हीं को कर्ता-धर्ता माना जाएगा। भाई-बन्धु वे ही माने जायँगे जिनका सम्बन्ध योनि या जन्म को लेकर रहेगा (जैसे पुत्र, भाई आदि)। किन्तु विद्या-सम्बन्ध रखने वाले (गुरुभाई आदि) से

---

१ ख. सत्त्वं च।

यथाऽपरिचिता लोकास्तथा पुंसश्च बान्धवाः। सर्वकर्माक्षमाः पुंसो योषितामाज्ञया विना ॥२३॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा जात्याचारविनिर्णयः। संध्या च यज्ञसूत्रं च भावलुप्तं न संशयः ॥२४॥
म्लेच्छाचारा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च। म्लेच्छशास्त्रं पठिष्यन्ति स्वशास्त्राणि विहाय ते ॥
ब्रह्मक्षत्रविशां वंशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ ॥२५॥
सूपकारा भविष्यन्ति धावका वृषवाहकाः। सत्यहीना जनाः सर्वे सस्यहीना च मेदिनी ॥२६॥
फलहीनाश्च तरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः। क्षीरहीनास्तथा गावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम् ॥२७॥
दम्पती प्रीतिहीनौ च गृहिणः सुखवर्जिताः। प्रतापहीना भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः ॥२८॥
जलहीना नदा नद्यो दीर्घिकाः कन्दरादयः। धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एव च ॥२९॥
लक्षेषु पुण्यवान्कोऽपि न तिष्ठति ततः परम्। कुत्सिता विकृताकारा नरा नार्यश्च बालकाः ॥३०॥
कुवार्ताः कुत्सितपथा भविष्यन्ति ततः परम्। केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्या भयानकाः ॥३१॥
केचित्स्वल्पकुटीरेण नरेण च समन्विताः। अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च ॥३२॥
अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीडिताः। सस्यानि च भविष्यन्ति तडागेषु नदीषु च ॥३३॥
क्षेत्राणि सस्यहीनानि प्रकृष्टान्यर्थतः परम्। हीनाः प्रकृष्टा धनिनो बलदर्पसमन्विताः ॥३४॥

कोई बात भी नहीं करेगा ॥२१-२२॥ अपरिचित लोगों की भाँति भाई-बन्धुओं से लोग व्यवहार करेंगे। पुरुष स्त्री की आज्ञा के बिना कोई काम नहीं करेगा ॥२३॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रवर्ग अपने-अपने जातीय आचार-विचार को छोड़ देंगे। संध्यावंदन और यज्ञोपवीत आदि संस्कार तो बंद ही हो जायँगे, इसमें संशय नहीं ॥२४॥ चारों वर्ण के लोग म्लेच्छाचारी होंगे और अपने शास्त्रों को छोड़कर म्लेच्छों के शास्त्र पढ़ेंगे और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के वंशज कलियुग में शूद्रों के सेवक होंगे ॥२५॥ सभी जाति के लोग भण्डारी होंगे, दूत बनेंगे और बैल पर लादने का काम करेंगे, सत्य से रहित (झूठे) होंगे एवं पृथ्वी भी सस्य (फसल) से हीन होती रहेगी ॥२६॥ वृक्षों में फल नहीं लगेंगे, स्त्रियाँ सन्तानहीन होंगी, गौओं में दूध नहीं होगा और दूध में घी नहीं होगा ॥२७॥ दम्पति (पति पत्नी) में प्रीति नहीं होगी, गृही (गृहस्थ) को सुख नहीं मिलेगा। राजाओं में प्रताप नहीं होगा और प्रजावर्ग कर (मालगुजारी) आदि से पीड़ित रहेगा ॥२८॥ नद, नदी, बावली और झरने आदि जल से शून्य होंगे, तथा चारों वर्ण के लोग धर्महीन और पुण्यहीन होंगे ॥२९॥ लाखों में कोई एक पुण्यवान् होगा, और पुरुष, स्त्री एवं बालक कुत्सित विचार तथा विकृताकार वाले (टेढ़े, लूले) होंगे ॥३०॥ वे बुरी बातें बोला करेंगे तथा कुमार्ग पर चलेंगे। कुछ गाँव और नगर जनरहित होने के कारण भयानक मालूम होंगे ॥३१॥ कुछ में छोटी-छोटी झोंपड़ियों वाले मनुष्य रहेंगे। इस प्रकार ग्राम और नगर अरण्य के समान हो जायंगे ॥३२॥ सभी जंगलनिवासी लोग भी कर से पीड़ित रहेंगे। तालाबों और नदियों में खेती होगी ॥३३॥ खेतों में अच्छी खेती (फसल) नहीं होगी। अच्छी खेती से आमदनी नहीं होगी। नीच उत्तम मानें जायँगे, धनिक वर्ग बलवान् और अहंकारी होंगे ॥३४॥

प्रकृष्टवंशजा हीना भविष्यन्ति कलौ युगे। अलीकवादिनो धूर्ताः शठा वै सत्यवादिनः ॥३५॥
पापिनः पुण्यवन्तश्चाप्यशिष्टः शिष्ट एव च। जितेन्द्रिया लम्पटाश्च पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः ॥३६॥
तपस्विनः पातकिनो विष्णुभक्ता अवैष्णवाः। हिंसकाश्च दयायुक्ताश्चौराश्च नरघातिनः ॥३७॥
भिक्षुवेषधरा धूर्ता निन्दन्त्युपहसन्ति च। भूतादिसेवानिपुणा जनानां[1] मोदकारिणः ॥३८॥
पूजितास्ते भविष्यन्ति वञ्चका ज्ञानदुर्बलाः। वामना[2] व्याधियुक्ताश्च नरा नार्यश्च सर्वतः ॥३९॥
अल्पायुषो जरायुक्ता यौवनेषु कलौ युगे। पलिता षोडशे वर्षे महावृद्धास्तु विंशतौ ॥४०॥
अष्टवर्षा च युवती रजोयुक्ता च गर्भिणी। वत्सरान्ते प्रसूता स्त्री षोडशे च जरान्विता ॥४१॥
एताः काश्चित्सहस्रेषु वन्ध्याश्चापि कलौ युगे। कन्याविक्रयिणः सर्वे वर्णाश्चत्वार एव च ॥४२॥
मातृजायावधूनां च जारोपार्जनतत्पराः। कन्यानां भगिनीनां च जारोपार्जनजीविनः ॥४३॥
हरेर्नाम्नां विक्रयिणो भविष्यन्ति कलौ युगे। स्वयमुत्सृज्य दानं च कीर्तिवर्धनहेतवे ॥४४॥
तत्पश्चान्मनसाऽऽलोच्य स्वयमुल्लङ्घयिष्यति। देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च ॥४५॥
स्वदत्तां परदत्तां वा सर्वमुल्लङ्घयिष्यति। कन्यकागामिनः केचित्केचिच्छ्वश्रूभिगामिनः ॥४६॥

कलियुग में उत्तम वंश वाले नीच काम कर नीच कहलायेंगे। झूठ बोलने वाले, धूर्त, एवं शठ लोग सत्यवादी कहे जायँगे ॥३५॥ पापी लोग पुण्यवान् कहे जायँगे, अशिष्ट लोग शिष्ट माने जायंगे। लम्पट पुरुष जितेन्द्रिय कहे जायँगे और पुंश्चली स्त्रियां पतिव्रता कही जायँगी ॥२६॥ पातकी लोग तपस्वी कहे जायँगे, वैष्णव धर्म को मानने वाले लोग विष्णु के भक्त कहे जायँगे। हिंसा करने वाले दयालु कहे जायँगे। चोर लोग मनुष्यों की हत्या करेंगे। ॥३७॥ धूर्त लोग भिक्षु (संन्यासियों) के वेष बनाये चारों ओर निन्दा तथा उपहास करते फिरेंगे। भूत, प्रेत आदि के उपासक चतुर लोग लोकप्रिय कहलायेंगे ॥३८॥ वे ही नाममात्र के ज्ञानी एवं वञ्चक लोग सबसे पूजित होंगे। सब ओर पुरुष तथा स्त्रियाँ बौने तथा रोगी होंगे ॥३९॥ इस भाँति कलियुग में मनुष्य अल्पायु होंगे, युवावस्था में ही उन्हें बुढ़ाई आने लगेगी। सोलहवें वर्ष तक सब बाल पक जायँगे और बीसवें में महावृद्ध हो जायँगे ॥४०॥ स्त्रियाँ आठवें वर्ष में युवती हो जायँगी और उसी अवस्था में मासिक धर्म होने लगेगा एवं वे गर्भिणी भी होने लगेंगी। प्रत्येक वर्ष के अन्त में वे बच्चा पैदा करेंगी और सोलहवें वर्ष तक वृद्धा हो जायँगी ॥४१॥ कलियुग में सहस्रों में कुछ स्त्रियाँ बन्ध्या भी होंगी और चारों वर्ण के लोग कन्या-विक्रय करेंगे ॥४२॥ माता, स्त्री, बहू सभी जार (उपपति) से जीविका प्राप्त करने में तत्पर रहेंगी। पुरुष कन्याओं एवं भगिनियों के जार पति द्वारा अपनी जीविका चलायेंगे ॥४३॥ लोग कलियुग में भगवान् के नाम का विक्रय करेंगे और अपनी कीर्ति बढ़ाने के निमित्त स्वयं वस्तु का दान करेंगे ॥४४॥ किन्तु पश्चात् मन में सोचकर उसको वापस ले लेंगे। देववृत्ति, ब्राह्मणवृत्ति, अथवा गुरुकुल वृत्ति—चाहे वह अपनी दी हुई हो अथवा दूसरे की—कलि के मानव उसे छीन लेंगे। कलियुग में कोई व्यक्ति कन्यागामी, कोई श्वश्रूगामी, कोई वधूगामी और कोई सर्वगामी होंगे। कोई भगिनीगामी, कोई सौतेली मां

---

१ ०नानामपकारिणः० । २ क. ०ना ज्ञानयु० ।

केचिद्वधूगामिनश्च केचित्सर्वत्रगामिनः। भगिनीगामिनः केचित्सपत्नीमातृगामिनः ॥४७॥
भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौ युगे। अगम्यागमनं चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे ॥४८॥
आत्मयोनिं परित्यज्य विहरिष्यन्ति सर्वतः। पत्नीनां निर्णयो नास्ति भर्तृणां च कलौ युगे ॥४९॥
प्रजानां चैव वस्तूनां ग्रामाणां च विशेषतः। अलीकवादिनः सर्वे सर्वे चौर्यार्थलम्पटाः ॥५०॥
परस्परं हिंसकाश्च सर्वे च नरघातिनः। ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यन्ति च पापिनः ॥५१॥
लाक्षालोहरसानां च व्यापारं लवणस्य च। वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः ॥५२॥
शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वे च वृषलीरताः। पञ्चपर्वपरित्यक्ताः कुहूरात्रिषु भोजिनः ॥५३॥
यज्ञसूत्रविहीनाश्च संध्याशौचविहीनकाः ॥५४॥
पुंश्चली वार्धुषाऽवीरा कुट्टिनी च रजस्वला। विप्राणां रन्धनागारे भविष्यन्ति च पाचिकाः ॥५५॥
अन्नानां निर्णयो[1] नास्ति योनीनां च विशेषतः। आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे ॥५६॥
एवं कलौ संप्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छमया भवे। हस्तप्रमाणे वृक्षे चाङ्गुष्ठमाने च मानवे ॥५७॥
विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः कल्की भविष्यति। नारायणकलांशश्च भगवान्बलिनां बली ॥५८॥
दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः। म्लेच्छशून्यां च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ॥५९॥

के साथ गमन करने वाले और कोई भाई की स्त्री के साथ गमन करने वाले होंगे। घर-घर में लोग अगम्या स्त्री के साथ गमन करेंगे ॥४५-४८॥ केवल अपनी योनि (माता) को छोड़कर सभी स्त्रियों के साथ विहार करेंगे। इसलिए कलियुग में पत्नियों और पतियों का निर्णय नहीं हो सकेगा (अर्थात् सभी स्त्री-पुरुषों में अवैध व्यवहार होंगे) ॥४९॥ प्रजा किन्हीं ग्रामों और धनों पर अपना पूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त कर सकेगी। प्रायः सब निष्प्रयोजन झूठ बोलेंगे। सभी चोर और लम्पट होंगे ॥५०॥ सभी एक-दूसरे की हिंसा करेंगे और मनुष्यघाती होंगे। ब्राह्मण क्षत्रिय, एवं वैश्य—सबके वंशज पाप कर्म करेंगे ॥५१॥ ब्राह्मणों के वंशज लाह, लोहा, रस और नमक के व्यापार करेंगे, बैलों पर लादने का कार्य करेंगे एवं शूद्रों के शव जलायेंगे ॥५२॥ सभी लोग शूद्रों के अन्न खायँगे और शूद्र की स्त्रियों के साथ रमण करेंगे। विप्र पंचयज्ञ नहीं करेंगे और अमावस्या की रात्रि में भोजन भी करेंगे ॥५३॥ यज्ञोपवीत का त्याग कर संध्या वंदन और शौच कर्म से विहीन होंगे ॥५४॥ पुंश्चली, सूदखोर, पति-पुत्रहीन, कुटनी एवं रजस्वला स्त्री ब्राह्मणों के भोजनालय में भोजन बनाने का काम करेंगी ॥५५॥ अन्नों में, स्त्रियों में और आश्रमवासी मनुष्यों में कोई नियम नहीं रहेगा। कलियुग में सभी मलेच्छ हो जायँगे ॥५६॥ इस प्रकार घोर कलियुग के आ जाने पर संसार में सभी म्लेच्छ हो जायँगे। उस समय एक हाथ के वृक्ष होंगे और अंगूठे के बराबर मनुष्य होंगे ॥५७॥ तब विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के यहाँ नारायण की कला के अंश से महाबली कल्की भगवान् पुत्ररूप में प्रकट होंगे ॥५८॥ वे एक बहुत ऊँचे घोड़े पर बैठकर लम्बी तलवार से तीन रात में ही पृथ्वी को म्लेच्छों से शून्य कर देंगे ॥५९॥ इस भाँति पृथिवी को म्लेच्छ-रहित करके वे स्वयं अन्तर्धान हो जायँगे। उस समय समस्त

---

1. क. नियमो।

निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा चान्तर्धानं करिष्यति। अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति ॥६०॥
स्थूलप्रमाणं षड्रात्रं वर्षाधाराप्लुता मही। लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भविष्यति ॥६१॥
ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यन्त्युदयं मुने। प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समा तेषां च तेजसा ॥६२॥
कलौ गते च दुर्धर्षे संप्रवृत्ते कृते युगे। तपःसत्यसमायुक्तो धर्मः पूर्णो भविष्यति ॥६३॥
तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि। पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे ॥६४॥
राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ताः स्वधर्मिणः[1]। प्रतापवन्तो धर्मिष्ठाः पुण्यकर्मरताः सदा ॥६५॥
वैश्या वाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः। शूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसेविनः ॥६६॥
विप्रक्षत्रविशां वंशा विष्णुयज्ञपरायणाः। विष्णुमन्त्ररताः सर्वे विष्णुभक्ताश्च वैष्णवाः ॥६७॥
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा धर्मज्ञा ऋतुगामिनः। लेशो नास्ति ह्यधर्माणां धर्मपूर्णे कृते युगे ॥६८॥
धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे स्मृतः। कलौ प्रवृत्ते पादात्मा सर्वलोपस्ततः परम् ॥६९॥
वाराः सप्त यथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः। यथा द्वादश मासाश्च ऋतवश्च षडेव हि ॥७०॥
द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम्। चतुर्भिः प्रहरै रात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा ॥७१॥
वर्षः पञ्चविधो ज्ञेयः कालसंख्यां निबोध मे। यथा चाऽऽयान्ति यान्त्येव तथा युगचतुष्टयम् ॥७२॥

पृथिवी पर अराजकता फैल जाएगी और चारों ओर चोर-डाकुओं का उपद्रव बढ़ जायगा ॥६०॥ पश्चात् छह रात्रि तक मोटी धार से इतनी वर्षा होगी कि पृथ्वी पर जल ही जल दिखाई देगा। प्राणी, वृक्ष तथा घर कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा। इसके बाद एक साथ बारह आदित्य उदय होकर अपने तेज से इस पृथ्वी को सुखा डालेंगे ॥६२॥

यों होने पर दुर्धर्ष कलियुग समाप्त हो जाएगा और कृतयुग का आरम्भ होगा, जिसमें तप और सत्य से युक्त धर्म का पूर्णरूप से प्राकट्य होगा ॥६३॥ उस समय भूतल पर ब्राह्मण लोग तपस्वी, अत्यन्त धार्मिक और वेदज्ञाता होंगे तथा घर-घर में स्त्रियाँ अत्यन्त धार्मिक और पतिव्रता होंगी ॥६४॥ क्षत्रिय राजा होंगे। वे सभी अपने धर्मों के पालन करने वाले, ब्राह्मण के भक्त, प्रतापी, धर्मिष्ठ एवं सदा पुण्य कर्म से निरत रहने वाले होंगे ॥६५॥ वैश्य व्यापार कर्म में संलग्न रहकर ब्राह्मणों के भक्त तथा धार्मिक होंगे। उसी प्रकार शूद्र भी पुण्य स्वभाव वाले धर्मिष्ठ होकर ब्राह्मणों के सेवक होंगे ॥६६॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वंश वाले विष्णु-यज्ञ का अनुष्ठान करते रहेंगे। वे वैष्णव, भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना में संलग्न और विष्णु के भक्त होंगे ॥६७॥ वे श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणों के ज्ञाता, धर्म के वेत्ता तथा ऋतुकाल में स्त्री-प्रसंग करने वाले होंगे। इस प्रकार धर्मपूर्ण उस कृतयुग में अधर्म का लेश भी नहीं रहेगा ॥६८॥ धर्म त्रेतायुग में तीन पैर से, द्वापर में दो पैर से और कलियुग में एक पैर से रहता है। अनन्तर समस्त का लोप हो जाता है ॥६९॥ विप्र! जिस प्रकार सात दिन, सोलह तिथियाँ और बारह मास बताये गये हैं उसी भाँति छह ऋतुएँ भी होती हैं ॥७०॥ (मास में) दो पक्ष, (वर्ष में) दो अयन, चार पहर का दिन, चार पहर की रात्रि और तीस दिन का मास होता है ॥७१॥ वर्ष पाँच प्रकार का होता है। अब तुम्हें काल की संख्या बता रहा हूँ, जिस प्रकार दिन आते-जाते रहते हैं उसी प्रकार चारों युग आते-जाते रहते हैं ॥७२॥ मनु-

---

१ क. सुध०।

वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम् । शतत्रये षष्ट्यधिके नराणां च युगे गते॥
देवानां च युगो ज्ञेयः कालसंख्याविदां मतः ॥७३॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । मन्वन्तरसमं ज्ञेयं चेन्द्रायुः परिकीर्तितम् ॥७४॥
अष्टाविंशतिमे चेन्द्रे गते ब्राह्मं दिवानिशम् । अष्टोत्तरे वर्षशते गते पातो विधेर्भवेत् ॥७५॥
प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्रादृष्टा वसुंधरा । जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७६॥
ऋषयो जीविनः सर्वे लीनाः कृष्णे परात्परे । तत्रैव प्रकृतिर्लीना तेन प्राकृतिको लयः ॥७७॥
लये प्राकृतिकेऽतीते पाते च ब्रह्मणो मुने । निमेषमात्रः कालश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥७८॥
एवं नश्यन्ति सर्वाणि ब्रह्माण्डान्यखिलानि च । स्थितौ गोलोकवैकुण्ठौ श्रीकृष्णश्च सपार्षदः ॥७९॥
निमेषमात्रः प्रलयो यत्र विश्वं जलप्लुतम् । निमेषानन्तरे काले पुनः सृष्टिः क्रमेण च ॥८०॥
एवं कतिविधा सृष्टिर्लयः कतिविधोऽपि वा । कतिकृत्वो गतायातः संख्यां जानाति कः पुमान् ॥८१॥
सृष्टीनां च लयानां च ब्रह्माण्डानां च नारद । ब्रह्मादीनां च विध्यण्डे संख्यां जानाति कः पुमान् ॥८२॥
ब्रह्माण्डानां च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः । सर्वेषां परमात्मा च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥८३॥
ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट् । तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रस्तस्यांशा प्रकृतिः स्मृता ॥८४॥

ष्यों के एक वर्ष पूरा होने पर देवों का एक दिन-रात होता है। काल-संख्या वेत्ताओं के मत में मनुष्यों के तीन सौ साठ युगों के व्यतीत होने पर देवों का 'एक युग' होता है ॥७३॥ दिव्य एकहत्तर युगों का एक मन्वन्तर होता है। और मन्वन्तर के समान ही इन्द्र की आयु होती है ॥७४॥ इस प्रकार अट्ठाईस इन्द्र के गत होने पर 'ब्रह्मा का एक दिन-रात होता है। इस प्रकार के एक सौ आठ वर्ष बीत जाने पर ब्रह्मा की आयु पूरी होती है ॥७५॥ उसे ही 'प्राकृत प्रलय' जानना चाहिए। उस समय पृथिवी अदृश्य रहती है और सारा विश्व जल में लीन हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवता, ऋषिगण तथा समस्त जीवगण परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण में विलीन हो जाते हैं और प्रकृति भी उन्हीं में लीन होती है। इसीलिए यह 'प्राकृतिक लय, कहा जाता है ॥७६-७७॥

मुने! ब्रह्मा के पतन रूप उस प्राकृतिक लय के व्यतीत होने पर परमात्मा कृष्ण का एक निमेष काल (पलक भाँजना) होता है ॥७८॥ इस प्रकार अखिल ब्रह्माण्ड का नाश हो जाता है, किन्तु गोलोक और वैकुण्ठ-लोक तथा पार्षदों समेत भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ववत् विराजमान रहते हैं ॥७९॥ उनके निमेष मात्र काल में प्रलय होता है—सारा विश्व जलमग्न हो जाता है और निमेष के अनन्तर क्रमशः पुनः सृष्टि का क्रम चालू हो जाता है। ॥८०॥ इस प्रकार कितने बार सृष्टि हुई तथा कितने बार प्रलय हुआ, और कितने कल्प गये और आये, इसकी संख्या कौन पुरुष जान सकता है ॥८१॥ नारद! सृष्टियों, प्रलयों और ब्रह्माण्डों तथा ब्रह्माण्डों के भीतर रहने वाले ब्रह्मा आदि की संख्या कौन पुरुष जान सकता है ॥८२॥ परमात्मा श्रीकृष्ण ही सभी ब्रह्माण्डों के मात्र ईश्वर और वही सबके परमात्मा हैं तथा प्रकृति से परे हैं ॥८३॥ ब्रह्मा आदि देवता, महाविराट् और क्षुद्र विराट्—सब उसी परमात्मा के अंश हैं और प्रकृति भी उन्हीं का अंश है ॥८४॥ वही भगवान् श्रीकृष्ण दो रूपों में विभक्त

स च कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः। चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥८५॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत्। यद्यत्प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च ॥८६॥
विद्धयेकं सृष्टिमूलं तत्सत्यं नित्यं सनातनम्। स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्लिप्तं निर्गुणं परम् ॥८७॥
निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम्। अतीव कमनीयं च नवीननीरदप्रभम् ॥८८॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं गोपवेषं किशोरकम्। सर्वज्ञं सर्वसेव्यं च परमात्मानमीश्वरम् ॥८९॥
करोति धाता ब्रह्माण्डं ज्ञानात्मा कमलोद्भवः। शिवो मृत्युंजयश्चैव संहर्ता सर्वतत्त्ववित् ॥९०॥
यस्य ज्ञानाद्यत्तपसा सर्वेशस्तत्समो महान्। महाविभूतियुक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदः स्वयम् ॥९१॥
सर्वव्यापी सर्वपाता प्रदाता सर्वसंपदाम्। विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान्यस्य ज्ञानाज्जगत्पतिः ॥९२॥
महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमतीश्वरी। यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा यद्भक्त्या यस्य सेवया ॥९३॥
सावित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता। पूज्या द्विजानां वेदज्ञा यज्ज्ञानाद्यस्य सेवया ॥९४॥
सर्वविद्याधिदेवी सा पूज्या च विदुषां पुरा। यत्सेवया यत्तपसा यस्य ज्ञानात्सरस्वती ॥९५॥
यत्सेवया यत्तपसा प्रदात्री सर्वसंपदाम्। [1]धनदस्याधिदेवी सा महालक्ष्मीः सनातनी ॥९६॥

हो गए—एक द्विभुज और दूसरे चतुर्भुज। चतुर्भुज विष्णु वैकुण्ठ में विराजते हैं और द्विभुज स्वयं श्रीकृष्ण गोलोक में निवास करते हैं॥८५॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त चराचर प्राकृतिक कहे जाते हैं। जो-जो प्राकृतिक हैं, वे सब नश्वर हैं॥८६॥ सभी सृष्टियों का मूल कारण वही एक श्रीकृष्ण हैं जो सत्य, नित्य, सनातन, स्वेच्छामय परब्रह्म, निर्लिप्त, निर्गुण, प्रकृति से परे, उपाधिशून्य तथा निराकार हैं; फिर भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए वे शरीर धारण करते हैं। वे अत्यन्त कमनीय हैं। उनकी अंगकान्ति नूतन जलधर के समान है ॥८७-८८॥ उनके दो भुजाएँ हैं, हाथ में मुरली है, गोप जैसा वेश तथा किशोरावस्था है। सबके ज्ञाता, सबके सेव्य, परमात्मा एवं ईश्वर हैं॥८९॥ उनके नाभिकमल से उत्पन्न होकर ज्ञानात्मा ब्रह्मा ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं और समस्त तत्त्वों के वेत्ता एवं मृत्यु को जीतने वाले शिव (सृष्टि) संहार का कार्य करते हैं। उन्हीं के दिये ज्ञान से तथा उन्हीं के लिए किये गये तप के प्रभाव से वे उनके समान ही महान् एवं सर्वेश्वर हुए हैं। उन परमात्मा श्रीकृष्ण के ज्ञान के प्रभाव से ही भगवान् विष्णु महान् विभूति से सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, सब के रक्षक, सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करने में समर्थ, सर्वेश्वर तथा समस्त जगत् के अधिपति हुए हैं॥९०-९२॥ उन्हीं के ज्ञान, तप, भक्ति और सेवा द्वारा प्रकृति समस्त शक्तिमती महामाया और ईश्वरी हुई हैं॥९३॥ उन्हीं के ज्ञान और सेवा करने से माता सावित्री वेदों की अधिष्ठात्री देवी और द्विजों की पूज्या हुई हैं॥९४॥ उन्हीं की सेवा, तप और ज्ञान से सरस्वती समस्त विद्याओं की अधिदेवी और विद्वानों की पूज्या हुई हैं॥९५॥ उन्हीं की सेवा और तप करके सनातनी महालक्ष्मी समस्त सम्पत्ति की प्रदात्री और धन-धान्य की अधिष्ठात्री देवी हुई हैं॥९६॥ उन्हीं की सेवा के

---

१ ख. नसस्या०।

यत्सेवया यत्तपसा सर्वविश्वेषु पूजिता। सर्वज्ञानाधिदेवी[1] सा सर्वसंपत्प्रदायिनी ॥९७॥
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेशं प्राप या पतिम्। सर्वस्तुता च सर्वज्ञा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥९८॥
कृष्णवामांशसंभूता कृष्णप्राणाधिदेवता। [2]कृष्णप्राणाधिका प्रेम्णा राधिका कृष्णसेवया ॥९९॥
सर्वाधिकं च रूपं च सौभाग्यं मानगौरवम्। कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वं प्राप सेवया ॥१००॥
तपश्चकार सा पूर्वं शतशृङ्गे च पर्वते। दिव्यं युगसहस्रं च निराहाराऽतिकर्शिता ॥१०१॥
कृशां निःश्वासरहितां दृष्ट्वाचन्द्रकलोपमाम्। कृष्णो वक्षःस्थले कृत्वा रुरोद कृपया विभुः ॥१०२॥
वरं तस्यै ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम्। मम वक्षःस्थले तिष्ठ मयि ते भक्तिरस्त्विति ॥१०३॥
सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णा वै गौरवेण च। त्वं मे श्रेष्ठा[3] परं प्रेम्णा ज्येष्ठा त्वं सर्वयोषिताम् ॥१०४॥
वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया। सततं तव साम्योऽहं राध्यश्च प्राणवल्लभे ॥१०५॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथश्चक्रे तच्चेतनां ततः। सपत्नीरहितां तां च चकार प्राणवल्लभाम् ॥१०६॥
अन्या[4] या याश्च देव्यो वै पूजितास्तस्य सेवया। तपस्या यादृशी यासां तासां तादृक्फलं मुने ॥१०७॥

तथा तप के प्रभाव से दुर्गा समस्त विश्व में पूजित, सम्पूर्ण ज्ञान की अधीश्वरी, समस्त सम्पत्तियों को देने वाली, सबकी ईश्वरी, सबकी वन्द्या, सर्वाधीश्वर (शिव) को पति के रूप में प्राप्त करने वाली, सबकी स्तुत्य, सर्वज्ञ एवं भयंकर पीड़ा को मिटाने वाली हैं॥९७-९८॥ उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण के बाँयें भाग से उत्पन्न होने वाली राधिका ने भी, जो प्रेम के कारण उनके प्राणों की अधिदेवी हैं तथा उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, उनकी सेवा के प्रभाव से सर्वाधिक सौन्दर्य, सौभाग्य, मान और गौरव के साथ उनके वक्षःस्थल पर अपना स्थान तथा उनका पत्नीत्व प्राप्त किया है॥९९-१००॥ राधा ने पूर्वकाल में शतशृङ्ग पर्वत पर दिव्य सहस्र युगों तक तप किया था, जिसमें निराहार रहने के कारण वे अत्यन्त कृशकाय हो गयी थीं॥१०१॥ तब उन्हें कृश, श्वास-रहित, चन्द्र की (एक) कला की भाँति (सूक्ष्म) देखकर विभु भगवान् कृष्ण उन्हें अपने वक्षःस्थल से लगाकर करुणावश रोने लगे॥१०२॥ फिर उन्होंने राधा को सर्वदुर्लभ सारभूत वर प्रदान किया। वे बोले—'प्राणवल्लभे' तुम मेरे वक्षःस्थल पर सदैव रहो और मुझमें तुम्हारी भक्ति हो॥१०३॥ सौभाग्य, मान, प्रेम, एवं गौरव के द्वारा तुम मेरी श्रेष्ठा तथा अत्यन्त प्रेम के कारण सभी स्त्रियों में ज्येष्ठा पत्नी बनो॥१०४॥ तुम सबसे अधिक महत्त्व तथा गौरव प्राप्त करो मैं सदा तुम्हारी स्तुति करूँगा, पूजा करूँगा। तुम सदा मुझे अपने अधीन समझो। मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य रहूँगा' ॥१०५॥ इतना कहकर जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें सचेत किया और अपनी उन प्राणवल्लभा को सपत्नी के कष्ट से मुक्त कर दिया॥१०६॥ जिन-जिन देवताओं की जो-जो देवियाँ पति द्वारा सम्मानित हुई हैं, उनके उस सम्मान में श्रीकृष्ण की आराधना ही कारण है। मुने! जिनकी जैसी तपस्या है, उन्हें

---

१ ख. वंग्रामाधि० । २ ख. ०ष्ण प्रेमाधि० । ३ क. ०ष्ठा च प्रेष्ठा च प्रेयसी स० ।४ ख. येषां या।

दिव्यं वर्षसहस्रं च तपस्तप्त्वा हिमालये। दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्या बभूव ह॥१०८॥
सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गन्धमादने। लक्षवर्षं च दिव्यं च सर्ववन्द्या बभूव सा॥१०९॥
लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे। सर्वसंपत्प्रदात्री सा चाभवत्तस्य सेवया॥११०॥
सावित्री मलये तप्त्वा द्विजपूज्या बभूव सा। षष्टिवर्षसहस्रं च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम्॥१११॥
शतमन्वन्तरं तप्तं शंकरेण पुरा विभो। शतमन्वन्तरं चैव ब्रह्मणा तस्य भक्तितः॥११२॥
शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह। शतमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा पूज्यो बभूव ह॥११३॥
मन्वन्तरं तपस्तेपे शेषो भक्त्या च नारद। मन्वन्तरं च सूर्यश्च शक्रश्चन्द्रस्तथा गुरुः॥११४॥
दिव्यं शतयुगं चैव वायुस्तप्त्वा च भक्तितः। सर्वप्राणः सर्वपूज्यः सर्वाधारो बभूव सः॥११५॥
एवं कृष्णस्य तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः। मुनयो मानवा भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः॥११६॥
एवं ते कथितं सर्वं पुराणं च यथागमम्। गुरुवक्त्राद्यथा ज्ञातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥११७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० युगतन्माहात्म्यमन्वन्तरकालेश्वर-
गुणनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

वैसा ही फल प्राप्त हुआ है॥१०७॥ जैसे हिमालय पर्वत पर दुर्गा जी दिव्य सहस्र वर्षों तक तप और उनके चरणों के ध्यान करने के कारण सर्वपूज्या हो गईं॥१०८॥ सरस्वती गन्धमादन पर्वत पर एक लाख दिव्य वर्षों तक तप कर के सब की वन्द्या हुई हैं॥१०९॥ लक्ष्मी पुष्कर क्षेत्र में दिव्य सौ युगों तक तप कर के उनकी सेवा के प्रभाव से समस्त सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली हुई हैं॥११०॥ सावित्री मलयाचल पर दिव्य साठ सहस्र वर्षों तक तप और उनके चरणों का ध्यान कर के द्विजों की पूज्या हुई हैं॥१११॥ विभो! पूर्व काल में शंकर ने और ब्रह्मा ने सौ मन्वन्तरों के समय तक भक्तिपूर्वक तप किया था। तथा उतने ही दिन विष्णु भी तप करके समस्त चराचर के रक्षक बने। सौ मन्वन्तरों तक तप कर के धर्म पूज्य हुए॥११२-११३॥ नारद! एक मन्वन्तर के समय तक शेष, सूर्य, इन्द्र, चन्द्रमा और बृहस्पति ने भक्तिपूर्वक तप किया था॥११४॥ वायु दिव्य सौ युगों तक भक्तिपूर्वक तप कर के सब के प्राण, सब के पूज्य और सब के आधार हुए हैं॥११५। इसी भाँति भगवान् कृष्ण का तप करके समस्त देवगण, मुनिगण, मनुष्यवृन्द, राजा लोग और ब्राह्मणगण पूजित हुए हैं॥११६॥ इस प्रकार मैंने पुराण और आगम का सारभूत तत्त्व गुरुजी के मुख से जैसा सुना था, वैसा तुम्हें बता दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो॥११७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में युग, युग-माहात्म्य, मन्वन्तरकाल और ईश्वर-गुण-
निरूपण नामक सातवाँ अध्याय समाप्त॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

नारद उवाच

हर्रेर्निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च। तस्य पाते प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः ॥१॥
प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्रादृष्टा वसुंधरा। जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीना हराविति ॥२॥
वसुंधरा तिरोभूता कुत्र वा तत्र तिष्ठति। सृष्टेर्विधानसमये साऽऽविर्भूता कथं पुनः ॥३॥
कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रया जया। तस्याश्च जन्मविस्तारं वद मङ्गलकारणम् ॥४॥

श्रीनारायण उवाच

सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म कृष्णादिति श्रुतिः। आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥५॥
श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलमङ्गलम्। विघ्ननिघ्नं परं पापनाशनं पुण्यवर्धनम् ॥६॥
अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा। बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतं शृणु ॥७॥
ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा। आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा संवृतेति च ॥८॥
तयोर्जीवनकाले न प्रत्यक्षा च भवेत्स्फुटम्। ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरं तयोः ॥९॥

अध्याय ८

पृथ्वी का उपाख्यान

श्रीनारद बोले—भगवान् के निमेष (पलक भाँजने) मात्र से ब्रह्मा का पात (अन्त) होता है और उनका अन्त होना प्राकृतिक प्रलय कहा जाता है ॥१॥ उस प्राकृत प्रलय में यह वसुन्धरा पृथिवी (जल में) अदृश्य हो जाती है और समस्त विश्व जलमग्न रहता है, इस प्रकार सब कुछ भगवान् श्रीकृष्ण में विलीन हो जाता है ॥२॥ तो, यह पृथिवी अदृश्य होकर कहाँ रहती है और सृष्टि के आरम्भ में पुनः कैसे प्रकट हो जाती है? धन्या, मान्या, सब की आश्रयरूपा एवं विजयशालिनी होने का सौभाग्य उसे पुनः कैसे प्राप्त होता है? आप कृपया पृथ्वी के मंगलमय चरित्र को विस्तार से बताने की कृपा करें॥३-४॥

श्रीनारायण बोले—सम्पूर्ण सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् कृष्ण से सब की उत्पत्ति होती है और समस्त प्रलयों के अवसर पर प्राणी उन्हीं में लीन भी हो जाते हैं, ऐसा श्रुति कहती है ॥५॥ अब पृथ्वी के जन्म का प्रसंग सुनो, जो समस्त मंगलों का मंगल, विघ्ननाशक, उत्तम, पापनाशक एवं पुण्यवर्द्धक है ॥६॥ कुछ लोगों का कहना है कि यह पृथ्वी मधु-कैटभ नामक दैत्य के मेद से उत्पन्न हुई, जो पूर्वोक्त मत से विरुद्ध है। इसका आख्यान सुनो ॥७॥

प्राचीन काल में उन दोनों (मधु, कैटभ) दैत्यों ने युद्धस्थल में भगवान् विष्णु के तेज (पराक्रम) से प्रसन्न होकर कहा—'जहाँ पृथ्वी जल से ढकी न हो, वहाँ हम दोनों को मारो'। इससे यह स्पष्ट होता है कि उन दोनों के जीवनकाल में पृथ्वी स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ती थी। वे जब मर गए तब उनके शरीर से मेद निकला। उसी से

मेदिनीति च विख्यातेत्युक्ता यैस्तन्मतं शृणु। जलधौता कृशा पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः॥१०॥
कथयामि च तज्जन्म सार्थकं सर्वसंमतम्। पुरा श्रुतं च श्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे॥११॥
महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम्। मलो बभूव कालेन सर्वाङ्गव्यापको ध्रुवम्॥१२॥
सच च प्रविष्टः सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च। कालेन महता तस्माद्बभूव वसुधा मुने॥१३॥
प्रत्येकं प्रतिलोम्नां च स्थिता कूपेषु सा स्थिरा। आविर्भूता तिरोभूता सा[1] चला च पुनः पुनः॥१४॥
आविर्भूता सृष्टिकाले [2]तज्जलात्पर्युपस्थिता। प्रलये च तिरोभूता जलाभ्यन्तरवस्थिता॥१५॥
प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता। सप्तसागरसंयुक्ता [3]सप्तद्वीपमिता सती॥१६॥
हिमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसंयुता। ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तथा नुता॥१७॥
पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता। काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सर्वदुर्गसमन्विता ॥१८॥
पातालाः सप्त तदधस्तदूर्ध्वे ब्रह्मलोकतः। ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वं विश्वं च तत्र वै॥१९॥
एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि वै। ऊर्ध्वं गोलोकवैकुण्ठौ नित्यौ विश्वपरौ च तौ॥२०॥
नश्वराणि च विश्वानि कृत्रिमाकृत्रिमाणि च। प्रलये प्राकृते ब्रह्मन्ब्रह्मणश्च निपातने॥२१॥

पृथ्वी बनी। इसलिए पृथ्वी को मेदिनी कहते हैं। इस मत का स्पष्टीकरण सुनो। पहले सर्वत्र जल ही जल दृष्टि-गोचर हो रहा था। पृथ्वी जल से ढकी थी। मेद से केवल उसका स्पर्श हुआ। अतः लोग उसे 'मेदिनी' कहने लगे॥८-१०॥ अब मैं उसका सार्थक और सर्वसम्मत जन्म सुना रहा हूँ, जिसे प्राचीनकाल में पुष्कर क्षेत्र में धर्म के मुख से मैंने सुना था और वह वेदानुसार भी हैं॥११॥ जल में रहने वाले महाविराट् के शरीर में बहुत दिनों से सर्वाङ्गव्यापी मल जम गया था, जो चिरकाल से स्पष्ट हो रहा था॥१२॥ मुने! वह उनके सभी लोम-विवरों में प्रविष्ट हो गया था, जो समय पाकर पृथ्वी रूप में प्रकट हुआ॥१३॥ इस प्रकार उनके प्रत्येक लोम कूप में एक-एक पृथ्वी अवस्थित है, जो सृष्टि के समय प्रकट होती है और प्रलयकाल में तिरोहित हो जाती है। वह बार-बार चलायमान भी होती है॥१४॥ सृष्टि के समय प्रकट होकर जल के ऊपर स्थिर रहना और प्रलयकाल में उस जल के भीतर तिरोहित हो जाना, यही उसका नियम है॥१५। प्रत्येक विश्व में यह पृथ्वी पर्वत, जंगल, सातों सागरों और सातों द्वीपों से युक्त रहती है॥१६॥ उसी भाँति हिमालय, मेरु, ग्रह, चन्द्र तथा सूर्य से संयुक्त रह कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवों और समस्त लोकों से परिपूर्ण रहती है॥१७॥ पुण्य तीर्थों, पुण्य भारत देश, सुवर्णमयी भूमि (सोने की खानि सुमेरु) और समस्त दुर्गों से युक्त रहती है॥१८॥ पाताल आदि सात लोक उसके नीचे और ब्रह्म लोक आदि सात लोक तथा ध्रुव लोक इसके ऊपर स्थित हैं। इसी प्रकार सारा विश्व उसी पर स्थित रहता है॥१९॥ इस प्रकार इस पृथ्वी पर अखिल विश्व का निर्माण हुआ है। ऊपर गोलोक और वैकुण्ठ लोक नित्य हैं एवं विश्व से परे हैं॥२०॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार ब्रह्मा के अन्त होने पर, जो प्राकृत प्रलय कहा जाता है, जितने कृत्रिम-अकृतिम विश्व हैं, सब का नाश हो जाता है॥२१॥ सृष्टि के आदि काल में भगवान् श्रीकृष्ण

१ क. ०ता सजला च। २ क. ०ज्जलोपर्यधःस्थि०। ३ क. सप्तस्वर्गस०।

महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चाऽऽत्मना। नित्ये स्थितः स प्रलये काष्ठाकाशेश्वरैः सह॥२२॥
क्षित्यधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः। मनुभिर्मुनिभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च॥२३॥
विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसंमता। तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मजः॥२४॥

नारद उवाच

पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही। वराहेण च वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती॥२५॥
तस्याः पूजाविधानं चाऽप्यधश्चोद्धरणक्रमम्। मङ्गलं मङ्गलस्यापि जन्म[1] वासं वद प्रभो॥२६॥

नारायण उवाच

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा। उद्दधार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात्॥२७॥
जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथाऽर्णवे। तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वं विश्वं मनोहरम्॥२८॥
दृष्ट्वा तदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः। वराहरूपी भगवान्कोटिसूर्यसमप्रभः॥२९॥
कृत्वा रतिकरीं शय्यां मूर्तिं च सुमनोहराम्। क्रीडां चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम्॥३०॥
सुखसंभोगसंस्पर्शान्मूर्च्छां संप्राप सुन्दरी। विदग्धया विदग्धेन [2]संगमोऽतिसुखप्रदः॥३१॥

स्वयं 'महाविराट्' की सृष्टि करते हैं, जो प्रलय में भी नित्य दिशा, आकाश एवं ईश्वरों (महान् देवों) के साथ स्थित रहता है॥२२॥ (भगवान् के) वराहावतार के समय पृथ्वी की आधिष्ठात्री देवी, जो देव, मनु, मुनि, ब्राह्मण और गन्धर्व-गणों से पूजित हुई है, वराह रूप भगवान् विष्णु की श्रुतिसम्मत पत्नी है। उन्हीं के पुत्र मंगल हैं और मंगल के पुत्र सुयशा हैं॥२३-२४॥

नारद बोले—प्रभो! देवताओं ने वाराहकल्प में पृथ्वी की किस रूप से पूजा की थी? सब को आश्रय प्रदान करने वाली इस साध्वी देवी की उस कल्प में स्वयं भगवान् वाराह ने तथा अन्य सब ने भी पूजा की थी। भगवन्! इसके पूजन का विधान, जल के नीचे से इसके ऊपर उठने का क्रम एवं मंगल के जन्म का कल्याण-मय प्रसंग विस्तार के साथ बताने की कृपा करें॥२५-२६॥

नारायण बोले—पूर्वकाल में वराहावतार के समय ब्रह्मा ने वराह भगवान् की स्तुति की, जिससे उन्होंने हिरण्याक्ष को मार कर रसातल से इस पृथ्वी का उद्धार किया॥२७॥ समुद्र में कमलपत्र की भाँति इस पृथ्वी को जल में स्थापित किया। उस पर ब्रह्मा ने समस्त मनोहर विश्व की रचना की॥२८॥ अनन्तर करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान वराह रूपी भगवान् विष्णु ने कामभाव से पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी (वाराही) को देखा, जो उस समय कामातुर हो रही थी। भगवान् ने रतिक्रीड़ा के योग्य शय्या और अत्यन्त मनोहर अपना रूप बना कर एकान्त में उसके साथ एक दिव्य वर्ष तक दिन रात भोग किया॥२९-३०॥ उस सुख-सम्भोग के अन्तमें वह सुन्दरी मूर्च्छित सी हो गयी क्योंकि रति-दक्षा नायिका का रति-दक्ष नायक के साथ समागम अति सुखदायी होता है॥३१॥ विष्णु

---

१ ख. ०न्म व्यासं व० । २ख. ०मोऽपि सु० ।

विष्णुस्तदङ्गसंश्लेषाद्बुबुधे न दिवानिशम्। वर्षान्ते चेतनां प्राप्य कामी[1] तत्याज कामुकीम्॥३२॥
चकार पूर्वरूपं हि वाराहं चैव लीलया। पूजां चकार भक्त्या च ध्यात्वा च धरणीं सतीम्॥३३॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिन्दूरैरनुलेपनैः। वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः॥३४॥

महावराह उवाच

सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः संपूजिता सती। मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैर्वा मानवादिभिः॥३५॥
जलोच्छ्वासाज्जलत्यागगृहारम्भप्रवेशने। वापीतडागारम्भे च शुभे च कृषिकर्मणि॥३६॥
तव पूजां करिष्यन्ति संभ्रमेण सुरादयः। मूढा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकं च ते॥३७॥

वसुधोवाच

वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया। लीलामात्रेण भगवन्विश्वं च सचराचरम्॥३८॥
मुक्तां शुक्तिं हरेरर्चां शिवलिङ्गं शिलां तथा। शङ्खं प्रदीपं रत्नं[2] च माणिक्यं हीरकं मणिम्॥३९॥
यज्ञसूत्रं च पुष्पं च पुस्तकं तुलसीदलम्। जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं च सुवर्णकम्॥४०॥
गोरोचनां चन्दनं च शालग्रामजलं तथा। एतान्वोढुमशक्ताऽहं क्लिष्टा च भगवञ्छृणु॥४१॥

को उसके अंगों का संग होने पर दिन रात का ज्ञान ही नहीं रहा। वर्ष के अन्त में उन्हें ज्ञान हुआ। तब उन्होंने उस सुन्दरी देवी का संग छोड़ दिया॥३२॥ और पूर्व की भाँति पुनः सहज ही में वाराह रूप धारण कर लिया। पश्चात् उन्होंने इस धरणी सती का भक्तिपूर्वक ध्यान-पूजन किया। धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, पुष्प और बलि द्वारा उसकी अर्चना करके भगवान् विष्णु ने उससे कहा॥३३-३४॥

महावराह बोले—शुभे! मुनिगण, मनुगण, देवों, सिद्धों और मनुष्यों आदि के द्वारा भलीभाँति पूजित हो कर तुम सब को आश्रय प्रदान करने वाली बनो। गृहारम्भ तथा गृहप्रवेश के समय और वावली, तालाब, कूप आदि खनने तथा (इनमें) जल बढ़ाने तथा (इनसे) जल निकालने के समय और शुभ कृषि कर्म में देवादि गण तुम्हारी पूजा करेंगे। जो मूढ़ उस समय पूजा नहीं करेंगे उन्हें नरकगामी होना पड़ेगा॥३५-३७॥

वसुधा बोली—भगवन्! आपकी आज्ञा से वाराह रूप धारण कर के मैं बड़ी सरलता से सचराचर समस्त विश्व का वहन करूँगी। किन्तु भगवन्! एक मेरी प्रार्थना है, उसे सुन लेने की कृपा करें—मोती, शुक्ति (सीपी), भगवान् की पूजा, शिवलिंग, शालग्राम शिला, शंख, प्रदीप, रत्न, माणिक्य, हीरा, मणि, यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसीदल, जपमाला, पुष्पों की माला, कपूर, सुवर्ण, गोरोचन, चन्दन और शालग्राम का जल वहन करने में मैं असमर्थ रहूँगी तथा क्लेश का अनुभव करूँगी॥३८-४१॥

---

१ क. कामं तत्याज कामिनी०। २ क. ०पं यन्त्रं च।

श्रीभगवानुवाच

द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि। यास्यन्लि कालसूत्रं ते दिव्यं वर्षशतं त्वयि ॥४२॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान्विरराम च नारद। बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मङ्गलग्रहः ॥४३॥
पूजां चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाऽऽज्ञया हरेः। दध्युः काण्वोक्तमार्गेण तुष्टुवुः स्तवनेन च ॥४४॥
दद्युर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिकमेव च। संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥४५॥

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं किंवा तस्य मूलं च किं वद। गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम ॥४६॥

नारायण उवाच

आदौ च पृथिवीदेवी वराहेण सुपूजिता। ततो हि ब्रह्मणा पश्चात्ततश्च पृथुना पुरा ॥४७॥
ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्नारदादिभिः। ध्यानं च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद ॥४८॥
ओं ह्रीं क्लीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा। इत्यनेन तु मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा ॥४९॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गीं सर्वभूषणभूषिताम् ॥५०॥
रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां भजे ॥५१॥
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिता भवेत्। स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमेव च ॥५२॥

भगवान् बोले—सुन्दरी! जो मूढ़ इन वस्तुओं को तुम्हारे ऊपर रखेगा, वह दिव्य सौ वर्ष पर्यन्त कालसूत्र नामक नरक में रहेगा ॥४२॥ नारद! इतना कह कर भगवान् चुप हो गए और अनन्तर उस पृथ्वी के गर्भ से तेजस्वी मंगल नामक ग्रह का जन्म हुआ ॥४३॥ अनन्तर भगवान् की आज्ञा से उपस्थित सब लोग काण्वोक्त पद्धति से पृथ्वी की पूजा और स्तुति करने लगे ॥४४॥ मूल मंत्र का उच्चारण करके उन्होंने नैवेद्य आदि वस्तुएँ अर्पित कीं। इस प्रकार तीनों लोकों में पृथ्वी की पूजा होने लगी ॥४५॥

नारद बोले—उसका ध्यान, स्तुति, और मूल-मंत्र क्या है? सभी पुराणों में छिपे हुए इस प्रनंग को सुनने के लि मेरे मन में बड़ा कौतूहल हो रहा है। अतः बताने की कृपा करें ॥४६॥

नारायण बोले—पूर्व काल में सर्वप्रथम वराह रूप भगवान् विष्णु ने इस पृथ्वी की पूजा की। पश्चात् ब्रह्मा और तदनन्तर राजा पृथु ने उस देवी की अर्चना की ॥४७॥ उपरान्त सभी मुनीन्द्रगण, मनुगण और नारदादि ऋषियों ने उनका सम्मान किया। नारद! अब ध्यान, स्तुति और मन्त्र बता रहा हूँ, सुनो! 'ओं ह्रीं क्लीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा' इस मन्त्र से भगवान् विष्णु ने पहले पृथ्वी की पूजा की थी। ध्यान का स्वरूप यह है—पृथ्वी देवी के शरीर का वर्ण श्वेत चम्पा के समान है, सैकड़ों चन्द्रमा के समान कान्ति है, सम्पूर्ण अंगों में चन्दन लगा हुआ है। सब प्रकार के आभूषणों से ये विभूषित हैं। ये समस्त रत्नों की आधारभूता और रत्नगर्भा हैं। रत्नों की खानें इनको गौरवान्वित किए हुए हैं। ये अग्निशुद्ध रेशमी वस्त्र धारण किए रहती हैं। इनके मुख पर मुसकान छायी है। सभी लोग इनकी वंदना करते हैं। ऐसी पृथ्वी की मैं वंदना करता हूँ ॥४८-५१॥ विप्रेन्द्र! इसी ध्यान द्वारा यह पृथ्वी देवी सबसे पूजित होती हैं, अब मैं काण्वशाखोक्त स्तुति बता रहा हूँ, सुनो ॥५२॥

विष्णुरुवाच

यज्ञसूकरजाया त्वं जयं देहि जयावहे। जयेऽजये जयाधारे जयशीले जयप्रदे ॥५३॥
सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते। सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे स्थिरे ॥५४॥
सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये सर्वसस्यदे। सर्वसस्यहरे काले सर्वसस्यात्मिके क्षिते ॥५५॥
मङ्गले मङ्गलाधारे माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे। मङ्गलार्थे मङ्गलांशे मङ्गलं देहि मे परम् ॥५६॥
पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि। पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे ॥५७॥
स्त्रीरत्नरूपे रत्नौघे रत्नसारवरप्रदे ॥५८॥
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे। भूमिपाहंकाररूपे भूमिं देहि वसुंधरे ॥५९॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं तां संपूज्य च यः पठेत्। कोटचन्तरे जन्मनि स संभवेद्भूमिपेश्वरः॥ ६०॥
भूमिदानकृतं पुण्यं लभते पठनाज्जनः। दत्तापहारजात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥६१॥
अम्बुवीचीभूखननात्पापान्मुच्येत स ध्रुवम्। अन्यकूपे कुपदजात्पापान्मुच्येत स ध्रुवम् ॥६२॥
परभूश्राद्धजात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। भूमौ वीर्यत्यागपापाद्दीपादिस्थापनात्तथा ॥६३॥
पापेन मुच्यते प्राज्ञः स्तोत्रस्य पठनान्मुने। अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥६४॥

इति श्री० म० प्र० नारदना० पृथिव्युपाख्याने पृथिवीस्तोत्रं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

विष्णु बोले—हे जय देने वाली! मुझे विजय दो। तुम भगवान् यज्ञवराह की पत्नी हो। जये! तुम्हारी कभी पराजय नहीं होती है। तुम विजय का आधार, विजयशील और विजयदायिनी हो। तुम सब की आधारभूमि हो। सर्वबीजस्वरूपिणी तथा सम्पूर्ण शक्तियों से सम्पन्न हो। समस्त कामनाओं को देने वाली देवी! तुम मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तु प्रदान करो। स्थिर स्वभाव वाली! तुम धान्यों का आलय, समस्त धान्यों से भूषित, सब प्रकार के अन्न देने वाली, विशेष समय पर सब धान्यों का अपहरण करने वाली, समस्त धान्यस्वरूपा और सहनशीला हो। मंगल-मूर्ति, मंगल का आधार, मंगलमय, मंगल देने वाली, मंगलस्वरूप और मंगल अंशों से पूर्ण हो, अतः मुझे परम मंगल प्रदान करो। तुम पुण्य स्वरूप वाली, पुण्यों की बीजस्वरूपा, सनातनी, पुण्यों का आधार, पुण्यवालों का मन्दिर, पुण्यदायिनी, भवस्वरूपा, स्त्रीरत्न, रत्न-समूह से युक्त तथा रत्नराशि देने वाली हो। भूमे! तुम भूमिपालकों का सर्वस्व, भूमिपाल-परायणा, एवं भूमिपालों के अहंकार का मूर्त रूप हो। वसुन्धरे! मुझे भूमि प्रदान करो। इस प्रकार जो वसुधा की अर्चना कर के इस महापुण्य स्तोत्र का पाठ करता है, वह करोड़ों जन्म तक भूमिपालक राजा होता है। इसके पाठ करने से मनुष्य को भूमिदान का पुण्य फल प्राप्त होता है। (कोई वस्तु) दान कर के पुनः उसका अपहरण करने से जो पाप लगता है, उससे इस स्तोत्र के पाठक को मुक्ति मिल सकती है, इसमें संशय नहीं। इसी प्रकार दूसरे के कुएँ को बिना उससे आज्ञा लिए खोदने से, अम्बुवीची योग में पृथ्वी को खोदने से और दूसरे की भूमि पर श्राद्ध करने से जो पाप लगता है, उस पाप से इस स्तोत्र का पाठक मुक्त हो जाता है। मुने! पृथ्वी पर वीर्यपात करने से तथा दीपक रखने से जो पाप होता है, उससे भी इस स्तोत्र के पाठक को मुक्ति मिल जाती है। इस स्तोत्र का पाठ करने से बुद्धिमान् पुरुष को सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं ॥५३-६४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में पृथ्वीस्तोत्र-वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

नारद उवाच

भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन यत्। परभूमौ [1]श्राद्धपापं कूपे कूपदजं तथा ॥१॥
अम्बुवीचीभूखननवीजत्यागजमेव च। दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥२॥
अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत्प्रश्नतः परम्। यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदां वर ॥३॥

नारायण उवाच

वितस्तिमानां भूमिं च यो ददाति च भारते। संध्यापूताय विप्राय स यायाद्विष्णुमन्दिरम् ॥४॥
भूमिं च सर्वसस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति यः। भूमिरेणुप्रमाणे च वर्षे विष्णुपदे वसेत् ॥५॥
ग्रामं भूमिं च धान्यं च यो ददात्याददाति यः। सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौ चोभौ वैकुण्ठवासिनौ ॥६॥
भूमिं ददाति यः काले यः साधुश्चानुमोदते। स प्रयाति च वैकुण्ठं मित्रगोत्रसमन्वितः ॥७॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। कालसूत्रे तिष्ठति स यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥८॥
तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः। सुखहीनो[2] दरिद्रः स्यादन्ते याति च रौरवम् ॥९॥

अध्याय ९

पृथ्वी का उपाख्यान

नारद बोले—मैं भूमिदान करने से प्राप्त होने वाले पुण्य और उसके अपहरण से लगने वाले पाप तथा दूसरे की भूमि पर श्राद्ध करने, कूप खोदने, अम्बुवीची योग में पृथ्वी का उपयोग करने, भूमि पर वीर्यपात करने और दीपादि रखने से लगने वाले पाप के बारे में सुनना चाहता हूँ॥१-२॥ वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! मेरे पूछने के अतिरिक्त अन्य भी जो पृथ्वीजन्य पाप हैं, उनको उनके प्रतीकार सहित बताने की कृपा करें॥३॥

नारायण बोले—भारत में संध्या कर्म से पवित्र ब्राह्मण को जो एक बित्ता भी भूमि अर्पित करता है, वह भगवान् विष्णु के धाम में जाता है॥४॥ जो सम्पूर्ण सस्यों से हरी-भरी भूमि ब्राह्मण को देता है, वह उस भूमि के रजःकण के समान वर्ष-पर्यन्त विष्णुलोक में निवास करता है॥५॥ गाँव, भूमि और धान्य का दान देने और लेने वाले दोनों समस्त पाप से मुक्त होकर वैकुण्ठ लोक के निवासी होते हैं॥६॥ भूमिदान का तत्काल अनुमोदन करने वाला सज्जन भी अपने मित्र एवं सगोत्रियों समेत वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करता है॥७॥

अपनी अथवा दूसरे की दी हुई ब्राह्मण की भूमि अपहरण करने वाला प्राणी चन्द्र-सूर्य के समय तक कालसूत्र (नरक) में स्थान पाता है॥८॥ और उसके पुत्र-पौत्र आदि परिवार भूमिहीन, धनरहित और सुख से वंचित एवं दरिद्र होते हैं तथा अन्त में रौरव नरक में गिरते हैं॥९॥ जो गोचर भूमि जोत कर उसमें खेती करता

---

१ ख. ०द्धरूपं। २ क. पुत्रही०।

गवां मार्गं विनिष्कृष्य यश्च सस्यं ददाति सः। दिव्यं वर्षशतं चैव कुम्भीपाके च तिष्ठति ॥१०॥
गोष्ठं तडागं निष्कृष्य मार्गं सत्यं ददाति यः। स च तिष्ठत्यसीपत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥११॥
न पञ्चपिण्डमुद्धृत्य स्नाति कूपे परस्य यः। प्राप्नोति नरकं चैव न स्नानफलमेव च ॥१२॥
कामी भूमौ च रहसि बीजत्यागं करोति यः। स्निग्धरेणुप्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे ॥१३॥
अम्बुवीच्यां भूखननं यः करोति च मानवः। स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम् ॥१४॥
परकीये लुप्तकूपे कूपं मूढः करोति यः। पुष्करिण्यां च लुप्तायां तां ददाति च यो नरः ॥१५॥
सर्वं फलं परस्यैव तप्तसूर्मि व्रजेत्तु सः। तत्र तिष्ठति संतप्तो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१६॥
परकीयतडागे च पङ्कमुद्धृत्य चोत्सृजेत्। रेणुप्रमाणवर्षं च ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥१७॥
पिण्डं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः। श्राद्धं करोति यो मूढो नरकं याति निश्चितम् ॥१८॥
भूमौ दीपं योऽर्पयति सोऽन्धः सप्तसु जन्मसु। भूमौ शङ्खं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मान्तरे लभेत् ॥१९॥
मुक्तामाणिक्यहीरं च सुवर्णं च मणिं तथा। यश्च संस्थापयेद्भूमौ दरिद्रः सप्तजन्मसु ॥२०॥
शिवलिङ्गं [1]शिलामर्च्यां यश्चार्पयति भूतले। शतमन्वन्तरं यावत्कृमिभक्षे स तिष्ठति ॥२१॥

है, वह दिव्य सौ वर्षों तक कुम्भीपाक नरक में रहता है॥१०॥ गौओं के रहने के स्थान और तालाब को तोड़ कर जो आने जाने का मार्ग बनाता है या उसमें खेती करता है, वह चौदह इन्द्रों के समय तक 'असिपत्र' नामक नरक में निवास करता है॥११॥ पाँच मुट्ठी मिट्टी निकाले बिना जो किसी अन्य के कूप या तालाब में स्नान करता है, वह स्नान-फल से वंचित होता है तथा नरक में गिरता है। जो कामान्ध व्यक्ति एकान्त में भूमि पर वीर्यपात करता है, उसे उस भीगी हुई भूमि के रजःकण के बराबर वर्षों तक रौरव नरक में रहना पड़ता है॥१२–१३॥ अम्बुवीची योग में भूमि खोदने वाला व्यक्ति चारों युगों के समय तक 'कृमिदंश' नामक नरक में रहता है॥१४॥ दूसरे के लुप्त कूप तथा लुप्त बावली को अपने नाम से बनवाने वाला मनुष्य चौदहों इन्द्रों के समय तक 'तप्पसूर्मि' नामक नरक में रहता है और उसके बनवाने का समस्त फल दूसरे को हो जाता है॥१५-१६॥ जो दूसरे की भूमि में बनाये हुए तालाब से कीचड़ निकालकर पुनः उस तालाब से कोई स्वार्थ नहीं रखता है, वह मनुष्य वहाँ के रजःकण के बराबर वर्षों तक ब्रह्मलोक में निवास करता है॥१७॥ दूसरे की भूमि में श्राद्ध करते समय उस भूस्वामी को (कुछ) श्राद्धान्न दिये बिना जो मूढ़ मनुष्य उस श्राद्ध कर्म को सम्पन्न करता है उसे निश्चित नरक होता है॥१८॥ भूमि पर दीपक रखने वाला सात जन्मों तक अन्धा होता है और भूमि पर शंख रखने वाला दूसरे जन्म में कुष्ठ का रोगी होता है॥१९॥ मोती, माणिक्य, हीरा, सुवर्ण और मणि को भूमि पर रखने वाला मनुष्य सात जन्मों तक दरिद्र होता है॥२०॥ जो शिवलिंग तथा पूजनीय शिला (शालिग्राम) को पृथिवी पर रखता है, वह सौ मन्वन्तरों के समय तक 'कृमिभक्ष' नामक नरक में रहता है॥२१॥ (वैदिक) सूक्त, मन्त्र, (शालग्राम) शिला का जल (चरणामृत), पुष्प और तुलसीदल को भूमि पर रखने से मनुष्य चारों युगों के

---

१ क. शिवाम०।

'सूक्तं मन्त्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम्। यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरके युगम्॥२२॥
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनां तथा। यो मूढश्चार्पयेद्भूमौ स याति नरकं ध्रुवम्॥२३॥
मुने चन्दनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम्। संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वन्तरावधि॥२४॥
पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेत्तु यः। न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः॥२५॥
ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम्। ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं स्यात्सर्ववर्णकैः॥२६॥
यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण नहि सिञ्चति। स याति तप्तसूर्मिं च संतप्तः सर्वजन्मसु॥२७॥
भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः। जन्मान्तरे महापापी सोऽङ्गहीनो भवेद्ध्रुवम्॥२८॥
भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्तिता। वसु रत्नं या दधाति वसुधा च वसुंधरा॥२९॥
हरेरूरौ च या जाता सा चोर्वी परिकीर्तिता। धरा धरित्री धरणी सर्वेषां धरणात्तु या॥३०॥
इज्या च यागभरणात्क्षोणी क्षीणालये च या। महालये क्षयं याति क्षितिस्तेन प्रकीर्तिता॥३१॥
काश्यपी कश्यपस्येयमचला स्थितिरूपतः। विश्वंभरा तद्भरणाच्चान्ताऽनन्तरूपतः॥३२॥
पृथ्वीयं पृथुकन्यात्वाद्विस्तृतत्वान्मही मुने ॥३३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० पृथिव्युपाख्यानं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

समय तक नरक में रहता है॥२२॥ भूमि पर जप-माला (रुद्राक्ष आदि), पुष्पमाला, कपूर तथा गोरोचन रखनेवाला मूढ़ निश्चित ही नरक प्राप्त करता है॥२३॥ मुने ! चन्दन काष्ठ, रुद्राक्ष, कुश का मूल भाग भूमि पर रखने से मन्वन्तर के समय तक नरक में रहना पड़ता है॥२४॥ जो पुस्तक तथा यज्ञोपवीत भूमिपर रखता है, वह मनुष्य जन्मान्तर में ब्राह्मण के यहाँ जन्मग्रहण नहीं करता है॥२५॥ तथा उसे निश्चित ही ब्रह्म-हत्या के समान पाप लगता है। गाँठ में बँधे हुए यज्ञसूत्र की पूजा करना सभी द्विजातियों के लिए अत्यावश्यक है॥२६॥ यज्ञ करने के अनन्तर जो यज्ञभूमि को क्षीर (दूध) से सिंचित नहीं करता है, वह सभी जन्मों में संतप्त होकर 'तप्तसूर्मि' नामक नरक को प्राप्त करता है॥२७॥ भूकम्प और ग्रहण के समय भी जो पृथ्वी का खनन करता है, वह महापापी जन्मान्तर में निश्चित रूप से अंगहीन होता है॥२८॥ इस पर सबके भवन बने हैं, इसलिए यह भूमि कही जाती है और वसु (धन) धारण करने के कारण 'वसुधा' तथा 'वसुन्धरा' कहलाती है॥२९॥ (महाविराट्) भगवान् के ऊरु से उत्पन्न होने के कारण 'उर्वी' एवं सभी को धारण करने के कारण धरा, धरित्री और धरणी कही जाती है॥३०॥ यागों का भरण-पोषण करने के कारण 'इज्या' प्रलय में क्षीण होने के कारण 'क्षोणी' और महाप्रलय में नष्ट होने के कारण 'क्षिति' कही जाती है॥३१॥ कश्यप की पुत्री होने से 'काश्यपी', स्थिर रूप होने से 'अचला', समस्त विश्व का भरण (पोषण) करने के कारण 'विश्वम्भरा' तथा अनन्त रूप होने से 'अनन्ता' कहलाती है॥३२॥ मुने ! (राजा) पृथु की कन्या होने से यह 'पृथ्वी' और विस्तृत होने से 'मही' कही जाती है॥३३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में पृथ्वी-उपाख्यान नामक नवाँ अध्याय समाप्त॥९॥

---

१ क. शुक्तिं पत्रं सि०।

अथ दशमोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम्। गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१॥
भारतं भारतीशापादाजगाम सुरेश्वरी। विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदी सती ॥२॥
कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा। तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम् ॥३॥

नारायण उवाच

राजराजेश्वरः श्रीमान्सगरः सूर्यवंशजः। तस्य भार्या च वैदर्भी शैव्या च द्वे मनोहरे ॥४॥
सत्यस्वरूपः सत्येष्ठः सत्यवाक्सत्यभावनः। सत्यधर्मविचारज्ञः परं[1] सत्ययुगोद्भवः ॥५॥
एकस्यामेव पुत्रश्च बभूव सुमनोहरः। असमञ्ज इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्धनः ॥६॥
अन्या चाऽऽराधयामास शंकरं पुत्रकामुकी। बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य तु वरेण च ॥७॥
गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुषाव सा। तद्दृष्ट्वा च शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥८॥
शंभुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह। चकार संविभज्यैतत्पिण्डं षष्टिसहस्रधा ॥९॥

अध्याय १०

गंगा की उत्पत्ति का वर्णन

नारद बोले—हे वेदविदों में श्रेष्ठ! पृथ्वी का अत्यन्त सुमनोहर उपाख्यान तो मैंने सुन लिया, किन्तु अब गंगा का उपाख्यान सुनाने की कृपा करें। सुरेश्वरी (गंगा), जो विष्णुस्वरूपा एवं विष्णुपदी नाम से विख्यात हैं, सरस्वती के शाप से भारतवर्ष में किस प्रकार और किस युग में पधारीं? किसकी प्रार्थना एवं प्रेरणा से उन्हें वहाँ जाना पड़ा? वह पापनाशक, पवित्र एवं पुण्यप्रद प्रसंग मैं सुनना चाहता हूँ ॥१-३॥

नारायण बोले—सूर्य वंश में उत्पन्न श्रीमान् महाराजाधिराज सगर के, वैदर्भी और शैव्या नाम की अत्यन्त मनोहर दो स्त्रियाँ थीं, वह राजा सत्यमूर्ति, सत्यप्रिय, सत्यवक्ता, सत्यभावक और सत्यधर्म-विचार के ज्ञाता, श्रेष्ठ तथा सत्य युग में उत्पन्न हुए थे ॥४-५॥ उनकी शैव्या नामक पत्नी में एक कन्या और 'असमंजस' नामक एक अत्यन्त मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कुल को बढ़ाने वाला था ॥६॥ उनकी दूसरी पत्नी वैदर्भी ने पुत्र की कामना से भगवान् शंकर की आराधना की। शंकर के वरदान से उसे भी गर्भ धारण हुआ ॥७॥ अनन्तर सौ वर्ष व्यतीत होने पर उसने एक मांस-पिण्ड उत्पन्न किया, जिसे देख कर शिव का ध्यान करती हुई वह बार-बार रोने लगी ॥८॥ तब ब्राह्मण के वेष में भगवान् शंकर ने उसके समीप जा कर उस मांस-पिण्ड का भेदन किया, जिससे उसमें से साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए ॥९॥ वे सभी पुत्र महाबली, पराक्रमी और ग्रीष्मऋतु के मध्याह्नकालीन सूर्य के समान तेजस्वी

---

1 क. परमत्त्वगुणोद्म०।

सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाजुष्टकलेवराः ॥१०॥
कपिलर्षेः कोपदृष्ट्या बभूवुर्भस्मसाच्च ते। राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम मरणं[1] शुचा ॥११॥
तपश्चकारासमञ्जो गङ्गानयनकारणात्। तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥
दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणात्। तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥१३॥
अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणात्। तपः कृत्वा लक्षवर्षं मृतश्च कालयोगतः ॥१४॥
भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः। वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥१५॥
तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणात्। ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१६॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषकम्। परमात्मानमीशं च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१७॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं विभुम्। ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम् ॥१८॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१९॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम्। तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥२०॥
लीलया च वरं प्राप्य वाञ्छितं वंशतारकम्। तत्राऽऽजगाम गङ्गा सा स्मरणात्परमात्मनः ॥२१॥

शरीर धारण किए हुए थे ॥१०॥ (कुछ दिन के पश्चात्) भगवान् कपिल मुनि की कोपदृष्टि से वे सभी भस्म हो गए। उसे सुन कर राजा ने बड़ा रुदन किया और शोकाकुल होकर प्राण त्याग कर दिया ॥११॥ उपरान्त असमंजस ने गंगा लाने के लिए तप करना आरम्भ किया। एक लाख वर्षों तक तप करने पर कालयोग से उनकी मृत्यु हो गयी ॥१२॥ पश्चात् उनके पुत्र दिलीप ने गंगा लाने के लिए एक लाख वर्षों तक तप कया किन्तु कालयोग से वे भी दिवंगत हो गए ॥१३॥ उनके पुत्र अंशुमान् ने भी गंगा लाने के लिए एक लाख वर्षों तक तप किया और अन्त में कलयोग से उन्हें भी शरीर छोड़ देना पड़ा ॥१४॥ उनके भगीरथ नामक अत्यन्त बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो महान् भगवदुपासक, वैष्णव, विष्णुभक्त, गुणवान् और अजर-अमर था ॥१५॥ एक लाख वर्षों तक तप करने के उपरान्त उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय भगवान् के श्रीविग्रह से ग्रीष्मकालीन करोड़ों सूर्य के समान प्रकाश फैल रहा था। उनकी दो भुजाएँ थीं। वे हाथ में मुरली लिये हुए थे। उनकी किशोर अवस्था थी। वे गोप के वेश में पधारे थे। भक्तों पर कृपा करने के लिए उन्होंने यह रूप धारण कर लिया था। मुने! भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम परब्रह्म हैं। वे चाहे जैसा रूप बना सकते हैं। उस समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि उनकी स्तुति कर रहे थे और मुनियों ने उनके सामने अपने मस्तक झुका रखे थे। सदा निर्लिप्त, सब के साक्षी, निर्गुण, प्रकृति से परे तथा भक्तों पर अनुग्रह करने वाले उन भगवान् श्रीकृष्ण का मुख मुसकान से सुशोभित था। विशुद्ध चिन्मय वस्त्र तथा दिव्य रत्नों से निर्मित आभूषण उनके श्रीविग्रह को सुशोभित कर रहे थे। उनकी यह दिव्य झाँकी पाकर भगीरथ ने उन्हें बार-बार प्रणाम किया तथा स्तुति की। अनन्तर वंश को तारने वाला वरदान उन्होंने भगवान् से सहज ही में प्राप्त कर लिया और परमात्मा के स्मरण करने पर गंगा भी उसी स्थान में आ

---

१ क. ०म च वनं शु० ।

तं प्रणम्य प्रतस्थौ च तत्पुरः संपुटाञ्जलिः। उवाच भगवांस्तत्र तां दृष्टवा सुमनोहराम्॥
कुर्वंतीं स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥२२॥

श्रीकृष्ण उवाच

भारतं भारतीशापाद्गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि ॥२३॥
सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाऽऽज्ञया। त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मम मन्दिरम्॥२४॥
बिभ्रतो दिव्यमूर्तिं ते दिव्यस्यन्दनगामिनः। मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः॥२५॥
कर्मभोगं समुच्छिद्य कृतं जन्मनि जन्मनि। नानाविधं महत्स्वल्पं पापं स्याद्भारते नृभिः॥२६॥
गङ्गायाः स्पर्शवातेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्। स्पर्शनं दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः॥२७॥
मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम्। कोटिजन्मार्जितं पापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्॥२८॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। नानाजन्मार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च॥२९॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम्। पुण्याहस्नानजं पुण्यं वेदा नैव विदन्ति च॥३०॥
केचिद्विदन्ति ते देवि फलमेव यथागमम्। ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव विदन्ति च॥३१॥
सामान्यदिवसस्नानसंकल्पं शृणु सुन्दरि। पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम्॥३२॥
ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने। अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने॥३३॥

गयीं। वे भगवान् को प्रणाम करके उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयीं। भगवान् ने उन्हें पुलकायमान शरीर से दिव्य एवं अत्यन्त मनोहर स्तुति करते हुए देख कर उनसे कहा॥१६-२२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे सुरेश्वरि! भारती सरस्वती के शाप वश तुम भारत में जाओ मेरी आज्ञा से वहाँ सगर के पुत्रों को पवित्र करो। वे तुम्हारे स्पर्श-वायु से पवित्र होकर मेरे धाम में चले जायँगे॥२३-२४॥ और वहाँ दिव्य मूर्ति धारण कर दिव्य रथ पर गमन करने वाले तथा सब समय निरामय रहने वाले मेरे पार्षद होंगे॥२५॥ उनके प्रत्येक जन्म का (दुष्कृत) कर्म भोग नष्ट होकर सुकृत रूप में परिणत हो जायगा। श्रुति कहती है कि भारतवर्ष में मनुष्यों द्वारा उपार्जित करोड़ों जन्मों के पाप गंगा के वायु के स्पर्शमात्र से नष्ट हो जाते हैं। देवी (गंगा) के दर्शन से स्पर्श करने में दश गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है॥२६-२७॥ सामान्य दिनों में भी मौसल (चुपके डुबकी लगाने मात्र) स्नान से मनुष्यों के करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट होते हैं, ऐसा श्रुतियों में सुना गया है॥२८॥ अनेकों जन्मों में अर्जित ब्रह्महत्या आदि अनेकों पाप, चाहे वे कामनावश ही किए गये हों, मनुष्यों के मौसल स्नान से नष्ट हो जाते हैं। और पुण्य दिनों में स्नान करने से उत्पन्न पुण्य का वर्णन तो वेद भी नहीं कर सकते हैं॥२९-३०॥ देवि! कुछ लोग शास्त्र से ही तुम्हारे फल को जान पाते हैं। वैसे तो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि भी तुम्हारे फल को नहीं जानते हैं॥३१॥ सुन्दरी! साधारण दिनों के स्नान-संकल्प को, जो मौसल स्नान से दश गुने अधिक पुण्य प्रदान करता है, बता रहा हूँ, सुनो॥३२॥ रविवार के दिन संक्रान्ति होने पर उस दिन गंगास्नान करने से मौसल—स्नान की अपेक्षा तीस गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है। अमावास्या के दिन भी उसके

ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे। चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च ॥३४॥
अक्षयायां च तत्तुल्यं नैतद्वेदे निरूपितम्। असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् ॥३५॥
सामान्यदिवसे स्नानं ध्यानाच्छतगुणं फलम्। मन्वन्तरेषु देवेशि युगादिषु तथैव च ॥३६॥
माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च। तथाऽशोकाष्टमीतिथ्यां नवम्यां च तथा हरेः ॥३७॥
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभम्। [1]दशपापहरायां तु दशम्यां सुमहत्फलम् ॥३८॥
नन्दोपमं च वारुण्यां महत्पूर्वं चतुर्गुणम्। ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति ॥३९॥
पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतो भवेत्। चन्द्रसूर्योपरागेषु स्मृतं दशगुणं ततः ॥४०॥
पुण्येऽप्यर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम्। सर्वेषामेव संकल्पो वैष्णवानां विपर्ययः ॥४१॥
फलसंधानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः। मत्प्रीतिभक्तिकामास्ते सर्वदा सर्वकर्मसु ॥४२॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशेत्परः। जीवन्मुक्तं वैष्णवं तं वेदाः सर्वे वदन्ति च ॥४३॥
पुरुषाणां शतं पूर्वं पैतृकं च परं शतम्। मातामहस्य च शतं मातरं मातृमातरम् ॥४४॥
भगिनीं भ्रातरं चैव भागिनेयं च मातुलम्। श्वश्रूं च श्वशुरं चैव गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् ॥४५॥
गुरुं च ज्ञानदातारं मित्रं च सहचारिणम्। भृत्यं शिष्यं तथा चेटीं प्रजां स्वाश्रमसंनिधौ ॥४६॥

समान पुण्य होता है। उसी भाँति दक्षिणायन सूर्य में दुगुना, उत्तरायण सूर्य में उससे दशगुना अधिक और चातुर्मास्य (चौमासे) की पूर्णिमा में अनन्त पुण्य होता है ॥३३-३४॥ अक्षय तिथि में उसी (चातुर्मास्य-पूर्णिमा) के समान पुण्य होता है, यह वेद में भी नहीं बताया गया है। इन दिनों में स्नान करने से असंख्य पुण्य की प्राप्ति होती है ॥३५॥ हे देवेशि ! सामान्य दिनों में स्नान करने से ध्यान से सौगुने अधिक फल प्राप्त होता है, उसी भाँति मन्वन्तरों और युगादिकों में भी फल कहा गया है ॥३६॥ माघ की शुक्ल सप्तमी, भीष्माष्टमी, अशोकाष्टमी और रामनवमी के दिन (गंगास्नान से) जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे दुगुना पुण्य नन्दा (तिथि) में प्राप्त होता है तथा दश पाप हरण करने वाली दशमी में अत्यन्त महान् पुण्य फल प्राप्त होता है। नन्दा के समान ही वारुणी में पुण्य प्राप्त होता है, महावारुणी में उससे चौगुना और महामहावारुणी में उससे भी चौगुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है, जो सामान्य दिनों के पुण्य-फल की अपेक्षा करोड़ गुना अधिक है। चन्द्र-सूर्य के ग्रहण के अवसर पर स्नान करने से उससे दश गुना अधिक पुण्य होता है। इसी प्रकार अर्धोदय योग में स्नान करने से सौगुना अधिक फल प्राप्त होता है। और लोगों की अपेक्षा वैष्णवों का गंगा-स्नान-संकल्प भिन्न होता है ॥३७-४१॥ वैष्णव लोग सर्वदा सभी कर्मों की फलासक्ति से रहित और जीवन्मुक्त होते हैं। वे मुझमें सदैव प्रीति-भक्ति की कामना रखते हैं ॥४२॥ क्योंकि भगवान् विष्णु का मन्त्र गुरु के मुख से निकल कर जिसके कर्णविवर में प्रविष्ट होता है, उसे सभी वेद जीवन्मुक्त वैष्णव कहते हैं ॥४३॥ वैष्णव मंत्र के ग्रहणमात्र से मनुष्य अपने पूर्व की सौ पीढ़ी, बाद की सौ पीढ़ी, मातामह की सौ पीढ़ी, माता, नानी, भगिनी, भाई, भानजा, मामा, सास-ससुर, गुरुपत्नी, गुरु-पुत्र, ज्ञान देने वाले गुरु, सहचारी मित्र, नौकर, शिष्य, नौकरानी और आश्रम (घर आदि) के समीप रहने वाली प्रजा (पड़ोसी) का भी उद्धार कर देता

---

१ क. ०शहरादशम्यां च युगाद्यादिसमं फ०।

उद्धरेदात्मना सार्धं मन्त्रग्रहणमात्रतः। मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥४७॥
तस्य संस्पर्शनात्पूतं तीर्थं च भुवि भारते। तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा॥४८॥
पादोदकस्थानमिदं तीर्थमेव भवेद्ध्रुवम्। अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्॥४९॥
खादन्ति नो वैष्णवाश्च सदा नैवेद्यभोजिनः। विष्णोर्निवेदितान्नं च नित्यं ये भुञ्जते नराः॥५०॥
पूतानि सर्वतीर्थानि तेषां च स्पर्शनादहो। विष्णो : पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः॥५१॥
तत्पापानि पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः। तेषां दर्शनमात्रेण पूतं च भुवनत्रयम्॥५२॥
विष्णोः सुदर्शनं चक्रं सततं तांश्च रक्षति। मद्गुणश्रवणाद्ये च पुलकाङ्कितविग्रहाः॥५३॥
गद्गदाः साश्रुनेत्राश्च नरास्ते वैष्णवोत्तमाः। पुत्रादपि परः स्नेहो मयि येषां निरन्तरम्॥
गृहाद्याश्च मयि न्यस्तास्ते नरा वैष्णवोत्तमाः ॥५४॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं मत्तः सर्वं चराचरम्। सर्वेषामहमेवेश इतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः॥५५॥
असंख्यकोटिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। प्रलये मयि लीयन्ते चेतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः॥५६॥
तेजः स्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम्। स्वेच्छामयं निर्गुणं च निरीहं प्रकृतेः परम्॥५७॥
सर्वे प्राकृतिका मत्त आविर्भूतास्तिरोहिताः। इति जानन्ति ये देवि ते नरा वैष्णवोत्तमाः॥५८॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः। उवाच तं त्रिपथगा भक्तिनम्रात्मकंधरा॥५९॥

है। मन्त्र ग्रहण मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त होता है॥४४-४७॥ भारत-भूतल के तीर्थ उसके स्पर्श से पवित्र होते हैं और उसी के चरण रज से वसुन्धरा (पृथ्वी) पवित्र होती है॥४८॥ उसके पादोदक का स्थान निश्चित ही तीर्थ होता है। विष्णु को निवेदन न किया गया अन्न विष्ठा के समान और जल मूत्र के समान होता है। उसे वैष्णव गण कभी नहीं खाते हैं। क्योंकि वे सदैव नैवेद्य (विष्णु का प्रसाद) ही भोजन करते हैं। जो मनुष्य नित्य विष्णु को भोग लगा कर अन्न ग्रहण करते हैं, उनके स्पर्श से सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। भगवान् विष्णु के पुण्य पादोदक का नित्य पान करने वाले मनुष्यों के साथ पाप उसी तरह भाग जाते हैं जैसे गरुड़ को देख कर सर्प भाग जाते हैं। उनके दर्शन मात्र से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं॥४९-५२॥ विष्णु का सुदर्शन चक्र उनकी निरन्तर रक्षा करता है। मेरे गुणों के श्रवण-मनन आदि करते ही उनका शरीर पुलकायमान हो उठता है और वे गद्गद तथा अश्रुपूर्ण हो जाते हैं, ऐसे व्यक्ति उत्तम वैष्णव हैं। जिन लोगों का मुझमें निरन्तर पुत्र से भी बढ़ कर स्नेह रहता है और गृह आदि सब कुछ मेरे भरोसे छोड़ देते हैं वे उत्तम वैष्णव हैं॥५३-५४॥ यहाँ से लेकर ब्रह्म-लोक तक यह समस्त चराचर जगत् मुझ (श्रीकृष्ण) से ही उत्पन्न होता है और मैं ही सब का अधीश्वर हूँ, ऐसा ज्ञान रखने वाले वैष्णव उत्तम हैं॥५५॥ असंख्य करोड़ ब्रह्माण्ड और ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी प्रलय के समय मुझ में लीन होते हैं, ऐसा जानने वाले वैष्णव उत्तम हैं॥५६॥ देवि! मैं तेजः स्वरूप, श्रेष्ठ, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए शरीर धारण करने वाला, स्वेच्छामय, निर्गुण, निरीह और प्रकृति से परे हूँ तथा समस्त प्राकृतिक सृष्टि मुझसे ही उत्पन्न और मुझमें ही तिरोहित होती है। ऐसा जानने वाले मनुष्य उत्तम वैष्णव हैं॥५७-५८॥ उन दोनों के सामने ऐसा कह कर देवेश (भगवान् श्रीकृष्ण) चुप हो गए। अनन्तर भक्तिपूर्वक शिर झुकाये गंगा ने कहा॥५९॥

गङ्गोवाच

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा। तवाऽऽज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव सांप्रतम् ॥६०॥
यानि कानि च पापानि मह्यं दास्यन्ति पापिनः। तानि मे केन नश्यन्ति तदुपायं वद प्रभो ॥६१॥
कति कालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते। कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णोः परमं पदम् ॥६२॥
ममान्यद्वाञ्छितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित्। सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञ तदुपायं वद प्रभो ॥६३॥

श्रीकृष्ण उवाच

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि। पतिस्ते रुद्ररूपोऽयं लवणोदो भविष्यति ॥६४॥
ममैवांशः समुद्रश्च त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी। विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भुवि ॥६५॥
यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते। सौभाग्यं तव तास्वेव लवणोदस्य सौरते ॥६६॥
अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम्। वर्षं स्थितिस्ते भारत्या भुवि शापेन भारते ॥६७॥
नित्यं वारिधिना सार्धं करिष्यसि रहो रतिम्। त्वमेव रसिका देवी रसिकेन्द्रेण संयुता ॥६८॥
त्वां तोषयन्ति स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च। भारतस्था जनाः सर्वे पूजयिष्यन्ति भक्तितः ॥६९॥
ध्यानेन कौथुमोक्तेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति। यः स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥७०॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥७१॥

गंगा बोलीं—हे नाथ! पूर्व काल के सरस्वती-शापवश मैं आपकी आज्ञा और राजेन्द्र (भगीरथ) के तप के कारण अभी भारत जा रही हूँ॥६०॥ किन्तु हे प्रभो! वहाँ पापी लोग पाप की राशि मुझ पर लाद देंगे। उसका नाश कैसे होगा? बताने की कृपा करें॥६१॥ हे सर्वेश! भारत में कितने दिनों तक मेरी स्थिति रहेगी और कब आपके परमोत्तम विष्णुलोक में जाऊँगी?॥६२॥ प्रभो! आप सर्ववेत्ता हैं, इसलिए मेरी अन्य कामनाओं को भी जानते हैं। हे सबके अन्तरात्मा और सर्वज्ञ! मेरे मनोरथ के पूर्ण होने का उपाय बताएँ॥६३॥

श्रीकृष्ण बोले—गंगे! सुरेश्वरि! मैं तुम्हारे सभी मनोरथों को जानता हूँ। रुद्र का रूप यह लवण-समुद्र तुम्हारा पति होगा॥६४॥ समुद्र मेरा ही अंश है और तुम लक्ष्मी स्वरूपिणी हो। चतुर नायक का चतुर नायिका के साथ समागम भूतल पर गुणवान् माना गया है॥६५॥ भारत में सरस्वती आदि अन्य जितनी नदियाँ होंगी, उन सब में समुद्र के लिए तुम्हीं सबसे अधिक सौभाग्यवती मानी जाओगी। देवेशि! कलियुग के पाँच सहस्र वर्षों तक तुम्हें सरस्वती के शाप से भारतवर्ष में रहना पड़ेगा॥६६-६७॥ तुम वहाँ एकान्त स्थान में रसिकेन्द्र समुद्र के साथ नित्य क्रीड़ा करोगी। क्योंकि तुम अत्यन्त रसविलासिनी हो॥६८॥ भारतनिवासी सभी लोग भक्तिपूर्वक भगीरथ-निर्मित स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति और पूजा करेंगे॥६९॥ कौथुमी शाखा की पद्धति के अनुसार जो तुम्हारा नित्य ध्यान, पूजा, स्तुति और प्रणाम करेंगे, वे अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करेंगे॥७०॥ सैकड़ों योजन की दूरी से जो 'गंगे-गंगे' कहता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है॥७१॥

सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति। मद्भक्तदर्शने तावत्तदैव हि विनश्यति ॥७२॥
पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्तव। मन्मन्त्रोपासकस्नानात्तदघं च विनश्यति ॥७३॥
यत्र यत्र भवेद्गङ्गे मन्नामगुणकीर्तनम्। तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनात् ॥७४॥
सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिः सरस्वत्यादिभिः शुभे। तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र मद्गुणकीर्तनम् ॥७५॥
यद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी। रेणुप्रमाणं वर्षं च स वैकुण्ठे वसेद्ध्रुवम् ॥७६॥
स्नास्यन्ति त्वयि ये भक्ता मन्नामस्मृतिपूर्वकम्। समुत्सृजन्ति प्राणांश्च ते गच्छन्ति हरेः पदम् ॥७७॥
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम्। असंख्यकं प्राकृतिकं लयं द्रक्ष्यन्ति ते नराः ॥७८॥
मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसेत्। प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदस्थ्नां स्थितिस्त्वयि ॥७९॥
कायव्यूहं ततः कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मजम्। तस्मै ददामि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम् ॥८०॥
अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत्। तस्मै ददामि सारूप्यं तं करोमि च पार्षदम् ॥८१॥
अन्यत्र वा [1]त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्। तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥८२॥
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणान्मन्नामस्मृतिपूर्वकम्। तस्मै ददामि सालोक्यं यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥८३॥

सहस्रों पापियों के स्नान करने से जो पाप तुम्हें होगा, वह मेरे भक्तों के दर्शन करने से उसी समय नष्ट हो जायगा ॥७२॥ उसी प्रकार सहस्रों पापियों के शव-स्पर्श से जो पाप तुम्हें प्राप्त होगा, वह मेरे मन्त्रों के उपासक भक्तों के स्नान करने से नष्ट हो जायगा ॥७३॥ गंगे! जिस-जिस स्थान पर मेरे नाम व गुणों का कीर्तन होगा, वहीं पाप नाश करने के कारण तुम्हारा निवास होगा ॥७४॥ शुभे! जहाँ-कहीं मेरे गुणों का कीर्तन होगा वहाँ सरस्वती आदि श्रेष्ठ नदियों के साथ तुम्हारे रहने से वह (स्थान) सद्यः तीर्थ बन जायगा ॥७५॥ वहाँ के रेणु-स्पर्शमात्र से पातकी पवित्र होकर वैकुण्ठ में उतने रेणु प्रमाण वर्षों तक निश्चित रूप से निवास करेंगे ॥७६॥ जो भक्त पुरुष मेरे नामों का स्मरण करते हुए तुम में स्नान करके प्राण-परित्याग करेंगे, वे विष्णु-पद को प्राप्त करेंगे ॥७७॥ वे विष्णु के चिरस्थायी पार्षद होंगे और वहाँ रहकर असंख्य प्राकृतिक प्रलय का दर्शन करेंगे ॥७८॥ मृतक प्राणी के बहुपुण्य होने पर ही उसका शव तुम्हारे जल में डाला जायगा और जब तक उसकी अस्थि तुम्हारे भीतर रहेगी उतने समय तक वह वैकुण्ठ में रहेगा ॥७९॥ फिर मैं उसे उसके कर्मजन्य शारीरिक भोग भोगा कर अन्त में सारूप्य मोक्ष प्रदान करता हूँ तथा अपना पार्षद बना लेता हूँ ॥८०॥ अज्ञानी प्राणी यदि तुम्हारे जल का स्पर्श करके अपने प्राणों का परित्याग करता है, तो मैं उसे सारूप्य मोक्ष देकर अपना पार्षद बनाता हूँ ॥८१॥ यदि मनुष्य तुम्हारे नाम का स्मरण करते हुए कहीं अन्यत्र प्राणोत्सर्ग करता है, तो मैं उसे असंख्य प्राकृत प्रलयों तक सालोक्य मोक्ष देता हूँ ॥८२॥ मेरे नामों के स्मरणपूर्वक अन्यत्र प्राण परित्याग करने वाले मनुष्य को ब्रह्मा की आयु तक सालोक्य (मोक्ष) प्रदान करता हूँ ॥८३॥ मेरे मंत्रों की उपासना तथा नित्य मेरे नैवेद्यों का भोजन

---

१ क. ०प्राणान्मन्ना०।

तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन। मन्मन्त्रोपासकानां च नित्यं नैवेद्यभोजिनाम् ॥८४॥
पूतं कर्तुं स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम्। रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदैः ॥
सद्यः स याति गोलोकं मम तुल्यो भवेद्ध्रुवम् ॥८५॥
मद्भक्तबान्धवा ये ये ते ते पुण्यधियः शुभे। ते यान्ति रत्नयानेन गोलोकं च सुदुर्लभम् ॥८६॥
यत्र यत्र मृता ये च ज्ञानाज्ञानेन वा सति। जीवन्मुक्ताश्च ते पूता भक्तसंनिधिमात्रतः ॥८७॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च तमुवाच भगीरथम्। स्तुहि गङ्गामिमां भक्त्या पूजां कुरु च सांप्रतम् ॥८८॥
भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः। ध्यानेन कौथुमोक्तेन स्तोत्रेण च पुनः पुनः ॥८९॥
श्रीकृष्णं प्रणनामाथ परमात्मानमीश्वरम्। भगीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्धानं गतो हरिः ॥९०॥

नारद उवाच

स्तोत्रेण केन ध्यानेन केन पूजाक्रमेण च। पूजां चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर ॥९१॥

श्रीनारायण उवाच

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी। पादौ प्रक्षाल्य चाऽऽचम्य संयतो भक्तिपूर्वकम् ॥९२॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवम्। संपूजयेन्नरः शुद्धः सोऽधिकारी च पूजने ॥९३॥
गणेशं विघ्ननाशाय निष्पापाय दिवाकरम्। वह्निं स्वशुद्धये विष्णुं मुक्तये पूजयेन्नरः ॥९४॥

करने वाले पुरुष चाहे तीर्थ में मरें या अतीर्थ में, कोई अन्तर नहीं पड़ता। ऐसा व्यक्ति सहज ही में त्रिलोकी को भी पवित्र कर देता है तथा वह मेरे तुल्य होकर मेरे पार्षदों के साथ उत्तम रत्नों के सार से बने हुए विमान से गोलोक में चला जाता है॥८५॥ शुभे! मेरे भक्तों के जितने पुण्यात्मा बान्धव होते हैं, वे भी रत्नखचित विमानों द्वारा अत्यन्त दुर्लभ गोलोक में जाते हैं॥८६॥ ज्ञानी, अज्ञानी किसी भी अवस्था में रह कर वे जहाँ कहीं प्राण परित्याग करते हैं, केवल भक्तों की सन्निधि मात्र से वे पवित्र एवं जीवन्मुक्त होते हैं॥८७॥ गंगा जी से इतना कह कर भगवान् श्री हरि ने भगीरथ से भी कहा—सम्प्रति भक्तिपूर्वक इस गंगा की स्तुति और पूजा करो॥८८॥ पश्चात् भगीरथ ने भक्तिपूर्वक कौथुमी शाखा के अनुसार ध्यान, पूजन और स्तोत्र द्वारा गंगा की बार-बार स्तुति की॥८९॥ फिर परमात्मा एवं ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और गंगा को भगीरथ ने प्रणाम किया तथा भगवान् अन्तर्धान हो गए॥९०॥

नारद बोले—वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ! राजा भगीरथ ने किस स्तोत्र, ध्यान और पूजा-क्रम से उनकी आराधना की, वह बताने की कृपा करें॥९१॥

श्री नारायण बोले—स्नान तथा नित्यक्रिया करने के उपरान्त दो स्वच्छ वस्त्र पहन कर पाद-प्रक्षालन और आचमन करने के उपरान्त भक्ति और संयमपूर्वक गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती की अर्चना करे॥९२-९३॥ विघ्न-निवारण के लिए गणेश की, पाप नाश के लिए सूर्य की, आत्म-शुद्धि के लिए अग्नि की, मुक्ति के लिए विष्णु की, ज्ञान के लिए शिव की और बुद्धि-वृद्धि के लिए पार्वती की पूजा करनी चाहिए। क्योंकि इन देवों की आराधना

शिवं ज्ञानाय[1] ज्ञानेशं शिवां बुद्धिविवृद्धये। संपूज्यैतल्लभेत्प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा ॥९५॥
दध्यावनेन तद्धयानं शृणु नारद तत्त्वतः। ध्यानं च कौथुमोक्तं वै सर्वपापप्रणाशनम् ॥९६॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां गङ्गां पापप्रणाशिनीम्। कृष्णविग्रहसंभूतां कृष्णतुल्यां परां[2] सतीम् ॥९७॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्। शरत्पूर्णेन्दुशतकप्रभाजुष्टकलेवराम् ॥९८॥
ईषद्धासप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्। नारायणप्रियां शान्तां सत्सौभाग्यसमन्विताम् ॥९९॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम्। सिन्दूरबिन्दुललितां सार्धं चन्दनबिन्दुभिः ॥१००॥
कस्तूरीपत्रकं गण्डे नानाचित्रसमन्वितम्। पक्वबिम्बसमानैकचार्वोष्ठपुटमुत्तमम् ॥१०१॥
मुक्तापङ्क्तिप्रभाजुष्टदन्तपङ्क्तिमनोहराम्। सुचारुवक्त्रनयनां सकटाक्षमनोरमाम् ॥१०२॥
कठिनं श्रीफलाकारं स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम्। बृहच्छ्रोणीं सुकठिनां [3]रम्भास्तम्भविनिन्दिताम् ॥१०३॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्टपादपद्मयुगं धराम्। रत्नाभरणसंयुक्तं कुङ्कुमावतं सयावकम् ॥१०४॥
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणम्। सुरसिद्धमुनीन्द्रादिदत्तार्घ्यैः संयुतं सदा ॥१०५॥

करने से प्राज्ञ को उक्त फल की प्राप्ति होती है और न करने से विपरीत फल भी मिलता है॥९४-९५॥ नारद! कौथुमी शाखानुसार समस्त पापों के नाशक जिस ध्यान को भगीरथ ने किया था, उसे यथार्थतः सुनो॥९६॥ श्वेत चम्पा के समान कान्तिपूर्ण वर्ण वाली, पापविनाशिनी, भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर से उत्पन्न होने वाली और उनके समान श्रेष्ठ उन सती गंगा का ध्यान करे, जो अग्नि के समान शुद्ध वस्त्र धारण किए हुए हैं, जो रत्नों के भूषणों से भूषित हैं, शरत्कालीन पूर्णिमा के सैकड़ों चन्द्रमा के समान प्रभापूर्ण हैं, जिनके प्रसन्न मुख पर मुसकराहट है और जो नित्ययौवना हैं। वे शास्त्रस्वरूपिणी देवी भगवान् नारायण की प्रिया हैं। सत्सौभाग्य कभी उनसे दूर नहीं हो सकता। उनके सिर पर सघन अलकावली है। मालती के पुष्पों की माला उनकी शोभा बढ़ा रही है। उनके ललाट पर चन्दन-बिन्दुओं के साथ सिन्दूर की बिन्दी है जिससे उनका लालित्य बढ़ रहा है। गण्डस्थल पर कस्तूरी से पत्र-रचना की गई है, जो नाना प्रकार के चित्रों से सुशोभित है। उनके ओष्ठपुट बिम्बाफल के समान सुन्दर है॥९७-१०१॥ दाँतों की पंक्तियाँ मोतियों की पंक्तियों की भाँति प्रभापूर्ण और मनोहर हैं, अत्यन्त सुन्दर मुख एवं नेत्र मनोरम कटाक्ष करने वाले हैं॥१०२॥ युगल स्तन कठोर और श्रीफल (बेल) के आकार वाले हैं। नितम्ब भाग विस्तृत और अत्यन्त कठोर है। ऊरु कदलीस्तम्भ को तिरस्कृत करने वाले हैं ॥१०३॥ युगल चरणकमल स्थलकमल की भाँति प्रभापूर्ण हैं। उन चरणों में रत्नों के आभूषण तथा कुंकुम मिश्रित महावर लगा हुआ है। देवराज इन्द्र के मुकुट में लगे हुए मन्दार के फूलों के रजः कण से इन देवी के श्री चरणों की लालिमा गाढ़ी हो गई है। देवता, सिद्ध और मुनीन्द्र अर्घ्य लेकर सदा सामने खड़े हैं। तपस्वियों के मुकुट में रहने वाले भौंरों की पंक्ति से इनके चरण संयुक्त हैं। इनके पावन चरण मुमुक्षु को मुक्ति देने वाले हैं तथा कामना

---

१ ख ०य तदीनां शि०। २ क ०रां सति०। ३ ख. ०म्भपरिष्कृता०।

तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम्। मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां स्वर्गभोगदम्॥१०६॥
वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहविग्रहाम्। श्रीविष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम्॥१०७॥
इति ध्यानेन चानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम्। दत्त्वा संपूजयेद्ब्रह्मन्नुपचारांश्च षोडश॥१०८॥
आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्। धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम्॥१०९॥
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश॥११०॥
दत्त्वा भक्त्या संप्रणमेत्स्तुत्वा तां संपुटाञ्जलि। संपूज्यैवंप्रकारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥१११॥
स्तोत्रं वै कौथुमोक्तं च संवादं विष्णुवेधसोः। शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं च सुपुण्यदम्॥११२॥

ओं नमो गङ्गायै। श्रीब्रह्मोवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त[1] नमः प्रभो। विष्णो विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारणम्॥११३॥

श्रीनारायण उवाच

शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गद्रवोद्भवाम्। राधाङ्गद्रवसंभूतां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥११४॥
या जन्मसृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले। संनिधाने शंकरस्य तां० ॥११५॥

वालों को स्वर्ग भोग देने वाले हैं॥१०४-१०६॥ इस प्रकार श्रेष्ठ, आदरणीय, वर देने वाली, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अधीर रहने वाली, भगवान् श्री विष्णु का पद देने वाली तथा विष्णुपदी नाम से विख्यात सती गंगा की मैं उपासना करता हूँ॥१०७॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार के ध्यान से तीन मार्गों से विचरण करने वाली (गंगा) का ध्यान कर के कल्याणी गंगा का स्मरण कर षोडशोपचार पूजन करे॥१०८॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नानार्थ जल, अनुलेपन (चन्दन), धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, गन्ध, आचमन और अत्यन्त मनोहर शय्या, यही अर्पण करने योग्य सोलह उपचार हैं॥१०९-११०॥ इन्हें भक्तिपूर्वक समर्पण करने के अनन्तर हाथ जोड़ कर स्तुति और प्रणाम करे। इस प्रकार पूजा करने से उसे अश्वमेध का फल प्राप्त होता है॥१११॥ नारद! कौथुमोक्त स्तोत्र तुम्हें बता रहा हूँ, जिसमें विष्णु और ब्रह्मा का संवाद हुआ है। वह स्तोत्र पापनाशक तथा अत्यन्त पुण्यप्रद है। सुनो!

ब्रह्मा बोले—देवेश, लक्ष्मीकान्त, प्रभो, विष्णो! आपको नमस्कार है। मैं आपसे गंगा का पापनाशक एवं पुण्यकारक स्तोत्र सुनना चाहता हूँ॥११२-११३॥

नारायण बोले—शिव के संगीत पर अत्यन्त मुग्ध हुए भगवान् श्रीकृष्ण और राधा के द्रवीभूत अंग से उत्पन्न होने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११४॥ सृष्टि के आदि काल में गोलोक के रासमण्डल में भगवान् शंकर के समीप रहने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११५॥ गोपों और गोपिकाओं से व्याप्त

---

१ क. ०न्त जगत्प्र०।

गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे। कार्तिकीपूर्णिमाजातां तां० ॥११६॥
कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः। समावृता या गोलोकं तां० ॥११७॥
षष्टिलक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। समावृता या वैकुण्ठं तां० ॥११८॥
त्रिंशल्लक्षैर्योजनैर्या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। समावृता ब्रह्मलोकं या तां० ॥११९॥
त्रिंशल्लक्षैर्योजनैर्या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः। आवृता शिवलोकं या तां० ॥१२०॥
षड्योजनसुविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः। मन्दाकिनी येन्द्रलोके तां० ॥१२१॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता ध्रुवलोकं या तां० ॥१२२॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता ततः। आवृता चन्द्रलोकं या तां० ॥१२३॥
योजनैः षष्टिसाहस्रैर्दैर्घ्ये दशगुणा ततः। आवृता सूर्यलोकं या तां० ॥१२४॥
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये षड्गुणिता ततः। आवृता सत्यलोकं या तां० ॥१२५॥
दशलक्षैर्योजनैर्या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः। आवृता या तपोलोकं तां० ॥१२६॥
सहस्रयोजना या च दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता जनलोकं या तां० ॥१२७॥
सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता या च कैलासं तां० ॥१२८॥
पाताले या भोगवती विस्तीर्णा दशयोजना। ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां० ॥१२९॥

शुभ राधा-महोत्सव के अवसर पर कार्तिक की पूर्णिमा के दिन उत्पन्न होने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११६॥ करोड़ों योजन चौड़ी और उससे लाखगुनी अधिक लम्बी होकर गोलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११७॥ साठ लाख योजन चौड़ी और उससे चौगुनी लम्बी होकर समस्त वैकुण्ठ को घेरने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११८॥ बीस लाख योजन चौड़ी तथा उससे चौगुनी लम्बी होकर ब्रह्मलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥११९॥ तीन लाख योजन चौड़ी और उससे पंचगुनी लम्बी होकर शिव लोक को घेरने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२०॥ छह योजन चौड़ी और उससे दशगुनी लम्बी होकर मन्दाकिनी नाम से इन्द्रलोक में विराजने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२१॥ एक लाख योजन चौड़ी और उससे सातगुनी लम्बी होकर ध्रुव लोक को घेरे रहने वाली उन गंगा को मैं नमस्कार करता हूँ॥१२२॥ एक लाख योजन चौड़ी एवं उससे छह गुनी लम्बी होकर चन्द्रलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२३॥ सात सहस्र योजन चौड़ी और उससे दश गुनी लम्बी होकर सूर्य लोक को घेरने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२४॥ एक लाख योजन चौड़ी तथा उससे छह गुनी लम्बी होकर सत्यलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२५॥ दश लाख योजन चौड़ी और उससे पाँच गुनी लम्बी होकर तपोलोक को घेरने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२६॥ एक सहस्र योजन चौड़ी एवं उससे सातगुनी लम्बी होकर जनलोक को आवृत करने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२७॥ सहस्र योजन चौड़ी और उससे सात गुनी लम्बी होकर कैलास को घेर कर स्थित रहने वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१२८॥ दश योजन चौड़ी और उससे दश गुनी लम्बी होकर पाताल में भोगवती नाम से विराजमान उन गंगा को मैं प्रणाम

क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा न कुत्रचित्। क्षितौ चालकनन्दा या तां० ॥१३०॥
सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसंनिभा। द्वापरे चन्दनाभा च तां० ॥१३१॥
जलप्रभा कलौ या च नान्यत्र पृथिवीतले। स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां० ॥१३२॥
यस्याः प्रभाव अतुलः पुराणे च श्रुतौ श्रुतः। या पुण्यदा पापहर्त्री तां० ॥१३३॥
यत्तोयकणिकास्पर्शः पापिनां च पितामह। ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत् ॥१३४॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन्गङ्गापद्यैकविंशतिम्। स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यबीजकम् ॥१३५॥
नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम्। अश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥१३६॥
अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम्। रोगान्मुच्येत रोगी च बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥१३७॥
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः। यः पठेत्प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम् ॥१३८॥
शुभं भवेत्तु दुःस्वप्नं गङ्गास्नानफलं भवेत् ॥१३९॥

नारायण उवाच

भगीरथोऽनया स्तुत्या स्तुत्वा गङ्गां च नारद। जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः ॥१४०॥
वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना। भगीरथेन साऽऽनीता तेन भागीरथी स्मृता ॥१४१॥

करता हूँ॥१२९॥ इस भूतल पर एक कोश चौड़ी तथा कहीं भी उससे क्षीण न होने वाली अलकनन्दा नाम से विराजमान गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१३०॥ सत्ययुग में दुग्ध के समान (वर्णवाली), त्रेता में चन्द्रमा के समान और द्वापर में चन्दन के समान कान्ति वाली उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१३१॥ कलियुग में जो केवल पृथ्वी पर जल की प्रभा से पूर्ण रहती है अन्यत्र नहीं और स्वर्ग में नित्य क्षीर की भाँति कान्तिमती रहती हैं, उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१३२॥ पुराण और वेदों में जिनका अतुलनीय प्रभाव सुना जाता है और जो पुण्यदायिनी एवं पापविनाशिनी है उन गंगा को मैं प्रणाम करता हूँ॥१३३॥ पितामह, ब्रह्मन्! जिनके जल की बूंद मात्र के स्पर्श होने से पापियों के करोड़ों जन्मों के अर्जित ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं, उन्हीं गंगा का इक्कीस पद्यों में निर्मित यह स्तोत्र तुम्हें बता दिया। यह उत्तम, पापनाशक और पुण्य का कारण है॥१३४-१३५॥ जो देवेश्वरी गंगा की अर्चना कर के भक्तिपूर्वक नित्य इस स्तोत्र का पाठ करते हैं, उन्हें नित्य अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं॥१३६॥ उसी प्रकार पुत्रहीन को पुत्र और स्त्रीविहीन को स्त्री की प्राप्ति होती है। रोगी रोग से मुक्त हो जाता है और बन्धन में पड़ा हुआ व्यक्ति उससे मुक्त हो जाता है॥१३७॥ प्रातःकाल उठ कर इस शुभ गंगा-स्तोत्र का पाठ करने वाला अल्प कीर्तिकारी मूर्ख भी अत्यन्त यशस्वी पण्डित हो जाता है। उसके दुःस्वप्न सुस्वप्न हो जाते हैं और गंगास्नान का फल प्राप्त होता है॥१३८-१३९॥

नारायण बोले—नारद! भगीरथ ने इस स्तोत्र से गंगा की स्तुति करके उन्हें लेकर उसी स्थान की यात्रा की, जहाँ सगर के (साठ हजार) पुत्र नष्ट हो गए थे॥१४०॥ वायु द्वारा गंगा का स्पर्श होते ही वे सभी पुत्र वैकुण्ठ धाम में चले गए। भगीरथ गंगा को ले आए, इस कारण गंगा को 'भागीरथी' कहा गया है॥१४१॥

इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्। पुण्यदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१४२॥

नारद उवाच

शिवसंगीतसंमुग्धे श्रीकृष्णे द्रवतां गते। द्रवतां च गतायां च राधायां किं बभूव ह ॥१४३॥
तत्रस्थाश्च जना ये ये ते च किं चक्रुरुद्यमम्। एतत्सर्वं सुविस्तीर्णं प्रभो वक्तुमिहार्हसि ॥१४४॥

नारायण उवाच

कार्तिकीपूर्णिमायां च राधायाः सुमहोत्सवे। कृष्णा संपूज्य तां राधामवसद्रासमण्डले ॥१४५॥
कृष्णेन पूजितां तां तु संपूज्याऽऽदृतमानसाः। ऊचुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः सनकादयः ॥१४६॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसंगीतं च सरस्वती। जगौ सुन्दरतानेन[1] वीणया च मनोहरम् ॥१४७॥
तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै महारत्नाढ्यमालिकाम्। शिरोमणीन्द्रसारं च सर्वब्रह्माण्डदुर्लभम् ॥१४८॥
कृष्णः कौस्तुभरत्नं च सर्वरत्नात्परं वरम्। अमूल्यरत्नखचितं हारसारं च राधिका ॥१४९॥
नारायणश्च भगवान्वनमालां मनोहराम्। अमूल्यरत्नकलितं लक्ष्मीर्मकरकुण्डलम् ॥१५०॥
विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी। दुर्गा नारायणीशानी विष्णुभक्तिं सुदुर्लभाम् ॥१५१॥

इस प्रकार गंगा का पूरा परमोत्तम उपाख्यान तुम्हें बता दिया, जो पुण्य और मोक्ष का दाता एवं सब का सार रूप है अब आगे और क्या सुनना चाहते हो ॥१४२॥

नारद बोले—शिव के संगीत से मुग्ध होकर भगवान् श्रीकृष्ण और राधिका जी के द्रवीभूत (जलमय) हो जाने के पश्चात् क्या हुआ? उस समय वहाँ जो लोग उपस्थित थे, उन्होंने कौन-सा उत्तम कार्य किया? हे प्रभो! यह सब बातें विस्तारपूर्वक बताने की कृपा करें ॥१४३-१४४॥

नारायण बोले—कार्तिकी पूर्णिमा के दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने राधिका जी के उस सुन्दर महोत्सव में राधा की भली भाँति पूजा करके रासमण्डल में उनके साथ निवास किया ॥१४५॥ भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सम्पूजित होने पर ब्रह्मा आदि सभी सनकादि ऋषियों ने भी उनकी पूजा की और निवेदन किया। इसी बीच सरस्वती ने अपनी वीणा की सुन्दर तान पर भगवान् श्रीकृष्ण का मनोहर संगीत गाना आरम्भ कर दिया। ॥१४६-१४७॥ तब ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उन्हें एक उत्तम रत्नों की बनी माला प्रदान की। श्रेष्ठ मणियों के सार भाग से रचित एक ऐसी उत्तम चूड़ामणि अर्पित की जो समस्त ब्रह्माण्ड में दुर्लभ है ॥१४८॥ श्रीकृष्ण ने समस्त रत्नों में श्रेष्ठ कौस्तुभ मणि भेंट की। राधिका ने अमूल्य रत्नों से निर्मित उत्तम हार प्रदान किया ॥१४९॥ भगवान् नारायण ने मनोहर वनमाला तथा लक्ष्मी ने अमूल्य रत्नों से निर्मित मकराकृति कुण्डल प्रदान किए ॥१५०॥ विष्णु की माया भगवती मूल प्रकृति ने, जो ईश्वरी, दुर्गा, नारायणी और ईशानी नाम से विख्यात हैं, अत्यन्त दुर्लभ विष्णु-भक्ति दी ॥१५१॥

---

१ क. ०तालेन।

धर्मबुद्धिं च धर्मस्तु यशश्च विपुलं भवे। वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च [1]मणिनूपुरम् ॥१५२॥
एतस्मिन्नन्तरे शंभुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः। जगौ श्रीकृष्णसंगीतं रासोल्लाससमन्वितम् ॥१५३॥
मूर्छां प्रापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा। क्षणेन चेतनां प्राप्य ददृशुः रासमण्डलम् ॥१५४॥
स्थलं सर्वं जलाकीर्णं हीनराधाहरिं तथा। अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे गोपा गोप्यः सुरा द्विजाः ॥१५५॥
ध्यानेन धाता बुबुधे सर्वमेतदभीप्सितम्। गतश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति ॥१५६॥
ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम्। स्वमूर्तिं दर्शय विभो वाञ्छितो वर एष नः ॥१५७॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी। तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरां शुभाम् ॥१५८॥
सर्वात्माऽहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा। ममाप्यस्याश्च हे देवा देहेन च किमावयोः ॥१५९॥
मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः। मन्मन्त्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यन्ति मत्पदम् ॥१६०॥
मूर्तिं द्रष्टुं च सुव्यग्रा यूयं यदि सुरेश्वराः। करोतु शंभुस्तत्रैव मदीयं वाक्यपालनम् ॥१६१॥
स्वयं विधाता त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरो। कर्तुं शास्त्रविशेषं च वेदाङ्गं सुमनोहरम् ॥१६२॥
अपूर्वमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः। स्तोत्रैश्च कवचैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः ॥१६३॥
मन्मन्त्रं कवचं स्तोत्रं कृत्वा यत्नेन गोपय। भवन्ति विमुखा ये न जनानां यत्करिष्यति ॥१६४॥

धर्म ने धार्मिक बुद्धि के साथ-साथ संसार में महायश प्रदान किया। अग्नि ने चिन्मय वस्त्र और वायु ने मणिमय नूपुर अर्पित किए ॥१५२॥ इतने में ब्रह्मा से बार-बार प्रेरित होकर शिव भी रास के उल्लास से युक्त श्रीकृष्ण का गीत गाने लगे ॥१५३॥ उसे सुन कर समस्त देववृन्द मूर्च्छित होकर चित्र की भाँति निश्चेष्ट हो गए, किन्तु एक क्षण के उपरान्त चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने रासमण्डल की ओर देखा, तो सम्पूर्ण स्थल जलमय हो गया था और भगवान् श्रीकृष्ण तथा राधा जी का कहीं पता नहीं था। अनन्तर गोपगण, गोपिकाएँ देवता और ब्राह्मण गण (अधीर होकर) अति उच्च स्वर से विलाप करने लगे ॥१५४-१५५॥ उस समय ब्रह्मा ने ध्यान लगा कर भगवान् की सभी अभीप्सित बातों को जान लिया और कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण राधा जी समेत जलमय हो गए हैं। पश्चात् ब्रह्मा आदि समस्त देवगण परमेश्वर की स्तुति करते हुए कहने लगे 'विभो! हमें आप अपनी मूर्ति का दर्शन करायें' यही हम लोगों की बड़ी अभिलाषा है ॥१५६-१५७॥ इस बीच वहाँ आकाशवाणी हुई, जो अत्यन्त स्पष्ट, मधुर और शुभ थी। उसे सभी लोगों ने सुना। उसने कहा—देवगण! सर्वात्मा मैं और भक्तों पर अनुग्रहार्थ शरीर धारण करने वाली यह मेरी शक्ति तो वर्तमान हैं ही। अब हम दोनों का विग्रह देखकर क्या करोगे ॥१५८-१५९॥ मनुगण, मनुष्यवृन्द, समस्त मुनि-समूह और वैष्णव लोग मेरे मन्त्र से पवित्र होकर मुझे देखने के लिए मेरे धाम में आयेंगे ॥१६०॥ सुरेश्वरवृन्द! यदि तुम लोग मुझे देखने के लिए अत्यन्त चिन्तित हो रहे हो, तो शिव जी से कहो कि उसी स्थान पर मेरे वचनों का पालन करें और ब्रह्मन्! जगद्गुरो! तुम स्वयं विधाता हो। शंकर से कह दो कि वे वेदों के अंगभूत परम मनोहर विशिष्ट शास्त्र अर्थात् तन्त्रशास्त्र का निर्माण करें। उसमें सम्पूर्ण अभीष्ट फल देने वाले बहुत-से अपूर्व मंत्र उद्धृत हों, स्तोत्र, ध्यान, पूजा-विधि, मन्त्र और कवच—इन सब से वह शास्त्र सम्पन्न हो। मेरे मंत्र और कवच का निर्माण करके उसे गुप्त रखने का प्रयत्न करो। जो मुझसे विमुख रहें,

---

१ क. ०णिहारकम्।

सहस्रेषु शतेष्वेको मन्मन्त्रोपासको भवेत्। ते ते जना मन्त्रपूताश्चाऽऽगमिष्यन्ति मत्पदम्॥१६५॥
अन्यथा च भविष्यन्ति सर्वे गोलोकवासिनः। निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्माण्डं चैव वेधसः॥१६६॥
जनाः पञ्चप्रकाराश्च युक्ताः स्रष्टुर्भवे भवे। पृथिवीवासिनः केचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः॥१६७॥
अधोनिवासिनः केचिद्ब्रह्मलोकनिवासिनः। केचिद्वा वैष्णवाः केचिन्मम लोकनिवासिनः॥१६८॥
इदं कर्तुं महादेवः करोतु सुरसंसदि। प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्तिं च पश्यसि॥१६९॥
इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः। तद्दृष्ट्वा तां जगद्धाता तमुवाच शिवं मुदा॥१७०॥
ब्राह्मणो वचनं श्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः। गङ्गातोयं करे धृत्वा स्वीचकार वचस्तु सः॥१७१॥
संयुक्तं विष्णुमायाद्यैर्मन्त्राद्यैः शास्त्रमुत्तमम्। वेदसारं करिष्यामि कृष्णाज्ञापालनाय च॥१७२॥
गङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः। स याति कालसूत्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥१७३॥
इत्युक्ते शंकरे ब्रह्मन्गोलोके सुरसंसदि। आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सह तत्पुरः॥१७४॥
ते तं दृष्ट्वा च संहृष्टाः संस्तूय पुरुषोत्तमम्। परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम्॥१७५॥
कालेन शंभुर्भगवाञ्छास्त्रदीपं चकार सः। इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यं च सुदुर्लभम्॥१७६॥
सा चैवं द्रवरूपा या गङ्गा गोलोकसंभवा। राधाकृष्णाङ्गसंभूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥१७७॥

उन्हें इसका उपदेश नहीं करना चाहिए। सैकड़ों एवं सहस्रों मनुष्यों में कोई एक ही मनुष्य मेरे मन्त्र का उपासक होगा। इससे जो-जो मनुष्य मेरे मन्त्र से पवित्र होंगे वे ही मेरे धाम में आएँगे। यदि मेरे धाम में न आ सकें तो वे सब गोलोक के निवासी हो जायँगे तब ब्रह्मा का सुरक्षित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड निष्फल हो जायगा॥१६१-१६६॥ ब्रह्मा की प्रत्येक सृष्टि में पाँच प्रकार के प्राणी हैं—पृथ्वीनिवासी, स्वर्गनिवासी, पातालनिवासी, ब्रह्मलोकनिवासी और मेरे लोक के निवासी वैष्णव लोग। यदि देव-सभा में महादेव ऐसा शास्त्र-निर्माण करने के लिए सुदृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं, तो तुरन्त मेरी मूर्ति का दर्शन हो जाएगा॥१६७-१६९॥ भगवान् सनातन आकाश में इतना कह कर चुप हो गए। इसे देखकर जगत्पति ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर (भगवान्) शंकर से उसकी पूर्ति के लिए अनुरोध किया॥१७०॥ ब्रह्मा की बात सुन कर ज्ञानिप्रवर और ज्ञानेश्वर शिव ने गंगाजल हाथ में लेकर उसकी स्वीकृति के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा की॥१७१॥ कि—'भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा के पालनार्थ मैं विष्णु की माया और मन्त्रों आदि से संयुक्त तथा वेद के सारभूत एक उत्तम शास्त्र (तन्त्रशास्त्र) की रचना करूँगा'॥१७२॥ यदि गंगा-जल लेकर कोई प्राणी मिथ्या बोलता है, तो ब्रह्मा की आयु पर्यन्त वह कालसूत्र (नरक) में रहता है॥१७३॥ ब्रह्मन्! गोलोक की उस देव-सभा में शंकर के इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर राधा समेत भगवान् श्रीकृष्ण तुरन्त प्रकट हो गए॥१७४॥ उन्हें देखकर देवताओं ने पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति की और परमानन्दमग्न होकर उस उत्सव कां पुनः आरम्भ किया॥१७५॥ कुछ समय के उपरान्त भगवान् शंकर ने शास्त्रदीप की (शास्त्रीय मत को प्रकाशित करने वाले सात्त्विक तन्त्रशास्त्र) की रचना की। इस प्रकार मैंने समस्त वृत्तान्त सुना दिया, जो अत्यन्त गोपनीय और सुदुर्लभ है॥१७६॥ इस प्रकार वही द्रवरूपा गंगा है जो गोलोक में उत्पन्न हुई थीं। राधा और कृष्ण के अंग से उत्पन्न हुई गंगा भुक्ति और मुक्ति दोनों को देने वाली हैं। परमात्मा श्रीकृष्ण की

स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन परमात्मना। कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्माण्डपूजिता॥१७८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृ० नारदना० गङ्गोपाख्यानं
नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः

नारद उवाच

कलेः पञ्चसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वरी। क्व गता सा महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१॥

श्रीनारायण उवाच

भारतं भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया। जगाम तं च वैकुण्ठं शापान्ते पुनरेव सा॥२॥
भारतं भारती त्यक्त्वा चागमत्तद्धरेः पदम्। पद्मावती च शापान्ते गङ्गायाश्चैव नारद॥३॥
गङ्गा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्रः प्रिया हरेः। तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्तिताः श्रुतौ॥४॥

व्यवस्था के अनुसार जगह-जगह रहने का सुअवसर इन्हें प्राप्त हो गया। श्रीकृष्ण-स्वरूपा इन आदरणीया गंगा को सम्पूर्ण ब्रह्मांड के लोग पूजते हैं॥१७७-१७८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में गंगोपाख्यानवर्णन
नामक दसवाँ अध्याय समाप्त॥१०॥

अध्याय ११

गंगा का उपाख्यान

नारद बोले—कलियुग के पाँच सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर महाभागा गंगा कहाँ जाएँगी? यह मुझे बताने की कृपा करें॥१॥

नारायण बोले—सरस्वती के शापवश गंगा जी भारत में आयीं और शाप के अन्त होने पर श्रीहरि की आज्ञा से वे पुनः वैकुण्ठ में चली जायँगी॥२॥ नारद! गंगा-शाप के अन्त होने पर सरस्वती और पद्मावती (लक्ष्मी) भी भारत को त्याग कर विष्णु लोक में पधारेंगी॥३॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार भगवान् विष्णु की गंगा, सरस्वती और लक्ष्मी ये तीन स्त्रियाँ हैं। तुलसी समेत चार पत्नियाँ वेद में प्रसिद्ध हैं॥४॥

नारद उवाच

हेतुना केन देवी वै विष्णुपादाब्जसंभवा। धातुः कमण्डलुस्था च शंकरस्य शिरोगता ॥५॥
बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गङ्गा नारायणप्रिया। अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥

श्रीनारायण उवाच

पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी। राधाकृष्णाङ्गसंभूता तदंशा तत्स्वरूपिणी ॥७॥
द्रवाधिष्ठातृरूपा या रूपेणाप्रतिमा भुवि। नवयौवनसंपन्ना रत्नाभरणभूषिता ॥८॥
शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा। तप्तकाञ्चनवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा ॥९॥
स्निग्धप्रभाऽतिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी। सुपीनकठिनश्रोणी सुनितम्बयुगं वरम् ॥१०॥
पीनोन्नतं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम्। सुचारुनेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवक्रिमम् ॥११॥
वक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्। सिन्दूरबिन्दुललितं सार्धं चन्दनबिन्दुभिः ॥१२॥
कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गण्डयुग्मं मनोहरम्। बन्धूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुन्दरम् ॥१३॥
पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वलम्। वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती ॥१४॥
सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुत्तस्थे सुलज्जिता[1]। वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम् ॥१५॥

नारद बोले—गंगा देवी भगवान् विष्णु के चरणकमल से क्यों निकलीं, ब्रह्मा के कमण्डल में क्यों स्थित हुईं और शंकर के मस्तक पर कैसे पहुँचीं? मुनिश्रेष्ठ! वही गंगा भगवान् विष्णु की प्रिया किस प्रकार हुईं, यह सब मुझे बताने की कृपा करें ॥५-६॥

नारायण बोले—पूर्वकाल में गंगा गोलोक में जल रूप से विराजमान थीं। राधा और कृष्ण के अंग से उत्पन्न यह गंगा उनका अंश और उन्हीं का स्वरूप हैं ॥७॥ जल की अधिष्ठात्री देवी गंगा भूतल पर अनुपम रूपवती, नवयौवना और रत्नों के आभूषणों से विभूषिता थीं ॥८॥ शरद् ऋतु के मध्याह्नकाल में कमल की भाँति उनका मुस्कान भरा मुख परम मनोहर था। उनकी आभा तपाये हुए सुवर्ण के सदृश थी। तेज में वह शरत्काल के चन्द्रमा को भी लज्जित कर रही थीं ॥९॥ स्निग्ध प्रभा के कारण उनके शरीर में अत्यन्त चिकनाहट थी। उनका शुद्ध सात्त्विक स्वरूप था। उनकी श्रोणी मांसल और कठोर थी। दोनों नितम्ब मनोहर थे। दोनों कुच स्थूल, उत्तुंग तथा गोल थे। दोनों नेत्र सुन्दर कटाक्ष एवं सुन्दर भंगिमा सहित आकर्षक थे। घुंघराले केशपाश पर मालती-माला शोभायमान थी। ललाट पर चन्दन-बिंदुओं के साथ सिंदूर की सुंदर बिंदी थी। दोनों मनोहर कपोलों पर कस्तूरी से पत्र-रचनायें हुई थीं। अधरोष्ठ दुपहरिया के विकसित पुष्प के समान सुन्दर था। दाँतों की अत्यंत उज्ज्वल पंक्ति पके हुए अनार के दानों की भाँति चमक रही थी। अग्निशुद्ध दो दिव्य वस्त्रों को उन्होंने धारण कर रखा था ॥१०-१४॥ इस प्रकार अत्यन्त सज-धज कर कामुकीभाव से लजाती हुई वह भगवान् श्रीकृष्ण के समीप विराजमान हो गईं। उनका मुखमंडल हर्ष से खिल रहा था। हृदय में नव-संगम की लालसा थी। इसलिए

---

१ ख ०ता। पद्मपत्रसमानाभ्यां लो०।

निमेषरहिताभ्यां च पिबन्ती सततं मुदा। प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसंगमलालसा ॥१६॥
मूर्च्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका ॥१७॥
गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता कोटिचन्द्रसमप्रभा। कोपेन रक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना ॥१८॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा मत्तवारणगामिनी। अमूल्यरत्नखचितनानाभरणभूषिता ॥१९॥
माणिक्यखचितं हारममूल्यं वह्निशौचकम्। पीताभवस्त्रयुगलं नीवीयुक्तं च बिभ्रती ॥२०॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्टं कोमलं च सुरञ्जितम्। कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यस्यन्ती पदाम्बुजम् ॥२१॥
रत्नेन्द्रराजखचितविमानादवरुह्य च। सेव्यमाना च सखिभिः श्वेतचामरवायुना ॥२२॥
कस्तूरीबिन्दुतिलकं चन्दनेन्दुसमन्वितम्। दीप्तदीपप्रभाकारं सिन्दूरारुणसुन्दरम् ॥२३॥
दधती भालमध्ये च सीमान्ताधस्तदुज्ज्वलम्। पारिजातप्रसूनादिमालायुक्तं सुवक्रिमम् ॥२४॥
सुचारुकबरीभारं कम्पयन्ती च कम्पिता। सुचारुनासा संयुक्तमोष्ठं कम्पयती रुषा ॥२५॥
गत्वा तस्थौ कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने वरे। सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः सभा ॥२६॥
तां च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ कृष्णः सादरमच्युतः। संभाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः ॥२७॥

वे आँचल से अपना मुख ढककर अपलक नेत्रों से भगवान् के मुख रूपी अमृत का निरन्तर प्रसन्नतापूर्वक पान कर रही थीं ॥१५-१६॥ भगवान् के रूप-दर्शन में वे इतना विभोर थीं कि मूर्च्छित-सी मालूम हो रही थीं और उनके शरीर में रोमांच हो रहा था। उस समय वहाँ राधिका जी उपस्थित हो गईं, जो तीस करोड़ गोपियों से युक्त तथा करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभापूर्ण थीं। क्रोध के कारण उनका मुख रक्तकमल की भाँति (लाल) हो गया और नेत्र रक्त-कमल के समान हो गए ॥१७-१८॥ श्वेत चम्पा के समान उनके शरीर का रंग था तथा मतवाले हाथी की भाँति चाल थी। अमूल्य रत्नों के बने अनेक भाँति के आभूषणों तथा मणियों से खचित अमूल्य हार से वे सुशोभित थीं। उन्होंने अग्नि-विशुद्ध दो पीत वस्त्र इजारबंद के साथ धारण कर रखे थे ॥१९-२०॥ उनके चरण-कमल स्थल-कमल की भाँति कान्तिपूर्ण, कोमल एवं अत्यन्त रंजित थे, जिन पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्घ्य प्रदान किया था। इस प्रकार के चरणों का विन्यास करती (डग भरती) हुईं परमोत्तम रत्नों से खचित विमान से वे नीचे उतरीं। सखियाँ स्वच्छ चँवर के वायु से उनकी सेवा कर रही थीं ॥२१-२२॥ उनके भाल के मध्य में चन्दन के चन्द्रमा युक्त कस्तूरी की बिन्दी की तिलक थी, जो प्रदीप्त दीप-प्रभा के समान आकृति वाली और सिन्दूर की अरुणिमा से अत्यंत सुन्दर थी ॥२३॥ उनके सीमन्त का निचला भाग परम स्वच्छ था। पारिजात के पुष्पों की सुन्दर माला उनके गले में सुशोभित थी। अपनी सुन्दर अलकावली को कँपाती हुई वे स्वयं भी कम्पित हो रही थीं। रोष के कारण उनके सुन्दर रागयुक्त ओष्ठ फड़क रहे थे ॥२४-२५॥ वे जाकर रत्न-सिंहासन पर कृष्ण के बगल में विराजमान हो गईं। परमेश्वर (कृष्ण) की सभा सखियों के समूहों से भर गई ॥२६॥ उन्हें देख कर अच्युत श्रीकृष्ण उठ कर उनका आदर करके मन्द मुसकान के साथ मधुर वाणी में उनसे बातचीत करने लगे ॥२७॥ अनन्तर गोपगणों ने भयभीत

प्रणेमुरतिभक्ताश्च गोपा नम्रात्मकंधराः। [2]तुष्टुवुस्ते च भक्त्या तं तुष्टाव परमेश्वरः ॥२८॥
उत्थाय गङ्गा सहसा संभाषां च चकार सा। कुशलं परिपप्रच्छ भीताऽतिविनयेन च ॥२९॥
नम्रभावस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका। ध्यानेन शरणापन्ना श्रीकृष्णचरणाम्बुजे ॥३०॥
तद्धृत्पद्मे स्थितः कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ। बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च ॥३१॥
ऊर्ध्वं सिंहासनस्थां च राधां गङ्गा ददर्श सा। सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा ॥३२॥
असंख्यब्रह्मणामाद्यां चाऽऽदिसृष्टिं सनातनीम्। यथा द्वादशवर्षीयां कन्यां च नवयौवनाम् ॥३३॥
विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च। शान्तां कान्तामनन्तां तामाद्यन्तरहितां सतीम् ॥३४॥
शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम्। सौन्दर्यसुन्दरीं श्रेष्ठां सुन्दरीष्वखिलासु च ॥३५॥
कृष्णार्धाङ्गीं कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा। पूजितां च महालक्ष्म्या महालक्ष्मीश्वरेण च ॥३६॥
प्रच्छाद्यमानां प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम्। सखीदत्तं च ताम्बूलं गृह्णतीमन्यदुर्लभम् ॥३७॥
अजन्यां सर्वजननीं धन्यां मान्यां च मानिनीम्। कृष्णप्राणाधिदेवीं च प्राणप्रियतमां रमाम् ॥३८॥

होकर उन्हें प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक स्तुति प्रारंभ कर दी। परमेश्वर श्रीकृष्ण भी उनकी स्तुति करने लगे ॥२८॥ गंगा ने भी सहसा उठकर उनका स्तवन किया और भयभीत होकर अत्यन्त विनय के साथ उनसे कुशल पूछा ॥२९॥ उस समय भय के कारण गंगा के कंठ, ओष्ठ और तालू सूख गये थे। वे विनीत भाव से खड़ी थीं। उन्होंने ध्यान के द्वारा श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों की शरण ली ॥३०॥ अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके हृदयकमल में स्थित होकर उन्हें अभयदान दिया और वे सर्वेश्वर भगवान् के वरदान से शांतचित्त हुईं ॥३१॥ पश्चात् गंगा ने ऊपर सिंहासनासीन श्री राधिकाजी को देखा, जो अत्यन्त स्निग्ध, देखने में अत्यन्त सुखकर और ब्रह्मतेज से प्रदीप्त हो रही थीं ॥३२॥ असंख्य ब्रह्मा की आदि जननी, आदि सृष्टिरूपा तथा सनातनी राधाजी की वह मूर्ति, नवयौवन-भूषित बारह वर्ष वाली कन्या के समान प्रतीत हो रही थी ॥३३॥ समस्त विश्व में उनके सदृश रूपवती और गुणवती कोई भी नहीं है। वे परम शान्त, कमनीय, अनन्त, आदि-अन्त से रहित, सती, शुभ, अत्यन्त भद्ररूप, सुन्दरी, पति-सौभाग्य से युक्त, सौन्दर्य की रानी तथा सकल सुन्दरियों में श्रेष्ठ थीं ॥३४-३५॥ वे भगवान् श्रीकृष्ण की अर्द्धांगिनी, उनके समान तेज, अवस्था और कान्ति से युक्त, महालक्ष्मीश्वर द्वारा पूजित होनेवाली महालक्ष्मी, भगवान् की उस सभा को अपनी कान्ति से आच्छादित करनेवाली एवं अत्यन्त प्रभाव से पूर्ण थीं। सखियों का दिया हुआ दुर्लभ पान वे ग्रहण कर रही थीं ॥३६-३७॥ वे स्वयं जन्मरहित, समस्त की जननी, धन्या, मान्या, मानिनी, भगवान् श्रीकृष्ण के प्राणों की अधीश्वरी, उनके प्राणों की प्रियतमा एवं रमा रूप हैं ॥३८॥ रासेश्वरी राधिका जी को इस भाँति देखकर गंगा को तृप्ति नहीं हो रही थी। वे अपने अनिमेषलोचनों से उनकी मधुर

---

१ ख. ०रभिसंत्रस्ता गो०। २ क. ०वुश्चातिसंतुष्टास्तु०।

दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी। निमेषरहिताभ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम् ॥३९॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा। वाचा मधुरया शान्ता विनीता सस्मिता मुने ॥४०॥

राधिकोवाच

केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखाम्बुजम्। पश्यन्ती सततं पार्श्वे सकामा रक्तलोचना ॥४१॥
मूर्छां प्राप्नोति रूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा। वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः ॥४२॥
त्वं चापि मां संनिरीक्ष्य सकामः[1] सस्मितः सदा। मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ॥४३॥
त्वमेव चैवं दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च। क्षमां करोमि ते प्रेम्णा स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा ॥४४॥
संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लम्पट। अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति[2] सुरेश्वर ॥४५॥
दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चन्दनकानने। क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो ॥४६॥
त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा। देहं संत्यज्य विरजा नदीरूपा बभूव सा ॥४७॥
कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी ॥४८॥
गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदन्तिकम्। उच्चैरुरोषीर्विरजे विरजे चेति संस्मरन् ॥४९॥
तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी। सालंकारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम् ॥५०॥

छवि का एकटक दर्शनपान कर रही थीं ॥३९॥ मुने! इसी बीच शान्त, विनीत राधिका ने मन्द-मन्द हँसती हुई मधुरवाणी में जगदीश भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥४०॥

राधिका बोलीं—हे प्राणेश! यह कल्याणमूर्ति कौन है, जो तुम्हारे पार्श्व में बैठकर सस्मित भाव से तुम्हारे मुखकमल को निरन्तर देख रही है? काम उत्पन्न होने से इसके नेत्र लाल हो गये हैं ॥४१॥ तुम्हारे रूप पर (मोहित होकर) मूर्च्छित सी हो रही है। इसके शरीर में रोमांच हो गया है और वस्त्र से अपना मुख ढककर बार-बार तुम्हें देख रही है ॥४२॥ तुम मुझे ही देखकर सदैव सस्मित भाव से कामुक होते थे; किन्तु अब मेरे रहते हुए भी गोलोक में इस प्रकार का दुराचार हो रहा है ॥४३॥ तुम इस प्रकार का दुर्व्यवहार बार-बार करते आये हो, किन्तु तुम्हारे प्रेम के कारण मैं क्षमा करती आयी हूँ क्योंकि स्त्री जाति कोमल स्वभाव की भोली-भाली होती है ॥४४॥ सुरेश्वर! (यदि ऐसा ही करना है) तो इसे लेकर यहाँ गोलोक से चले जाओ; अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥४५॥ क्योंकि पहले भी एक बार मैंने चन्दनवन में तुम्हें विरजा के साथ देखा था; किन्तु सखियों के कहने से मैंने क्षमा कर दी थी ॥४६॥ मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे पहले ही तिरोहित कर दिया था। तब, वह (विरजा) अपनी देह का त्याग कर नदी रूप में परिणत हो गई ॥४७॥ जो एक करोड़ योजन चौड़ी और उससे चौगुने योजन लम्बी होकर तुम्हारी सत्कीर्ति के रूप में आज भी विद्यमान है ॥४८॥ जब मैं घर चली गयी तो पुनः उसके समीप जाकर—हा विरजे, हा विरजे! कहकर तुम उच्च स्वर से (गला फाड़कर) रोने लगे। उस समय उस सिद्ध योगिनी ने योग द्वारा जल से निकल कर अलंकारों से सज-धज कर तुम्हें

---

१ क. ०म इव स। २ क. ०ति वज्रेश्वर।

ततस्तां च समाश्लिष्य वीर्याधानं कृतं त्वया। ततो बभूवस्तस्यां च समुद्राः सप्त चैव हि ॥५१॥
दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने। सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥५२॥
शोभा देहं परित्यज्य प्राविशच्चन्द्रमण्डलम्। ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह ॥५३॥
संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता। रत्नाय किंचित्स्वर्णाय किंचिन्मतिवराय च ॥५४॥
किंचित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किंचिद्राज्ञे च किंचन। किंचित्प्रकृष्टवस्त्रेभ्यो रौप्येभ्यश्चापि किंचन ॥५५॥
किंचिच्चन्दनपङ्केभ्यस्तोयेभ्यश्चापि किंचन। किंचित्किसलयेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किंचन ॥५६॥
किंचित्फलेभ्यः सस्येभ्यः सुपक्वेभ्यश्च किंचन। नृपदेवगृहेभ्यश्च संस्कृतेभ्यश्च किंचन ॥
किंचिन्नूतनवस्त्रेभ्यो गोरसेभ्यश्च किंचन ॥५७॥
दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने। सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया ॥५८॥
प्रभा देहं परित्यज्य प्राविशत्सूर्यमण्डलम्। ततस्तस्याः शरीरं च तीक्ष्णं तेजो बभूव ह ॥५९॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा। विभज्य चक्षुषोर्दत्तं लज्जया मद्भयेन च ॥६०॥
हुताशनाय किंचिच्च नृपेभ्यश्चापि किंचन। किंचित्पुरुषसंघेभ्यो देवेभ्यश्चापि किंचन ॥६१॥
किंचिद्दस्युगणेभ्यश्च[1] नागेभ्यश्चापि किंचन। ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किंचन ॥६२॥
स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो[2] यशस्विभ्यश्च किंचन। तच्च दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं रोदितुमुद्यतः ॥६३॥
शान्त्या गोप्या युतस्त्वं च दृष्टो वै रासमण्डले। वसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः ॥६४॥

अपना दर्शन दिया ॥४९-५०॥ अनन्तर तुमने उसका गाढालिंगन कर उसमें वीर्याधान किया। तब उससे सात समुद्रों की उत्पत्ति हुई ॥५१॥ दूसरी बार चम्पक वन में शोभागोपी के साथ (रति करते हुए) तुम पकड़े गये थे। वहाँ भी मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे छिपा दिया ॥५२॥ अनन्तर शोभा ने देहत्याग कर चन्द्रमण्डल में प्रवेश किया और उसका शरीर परम स्निग्ध तेज बन गया। तब तुमने हार्दिक समवेदना प्रकट करते हुए उस तेज का विभाग कर रत्न, सुवर्ण, श्रेष्ठ बुद्धिवाले मनुष्य, स्त्रियों के मुखकमल, राजा, उत्तम वस्त्र, चांदी, चन्दनपंक, जल, नूतन पल्लव, पुष्प, फल, पके अन्न, सुसंस्कृत राजगृह और देवमंदिरों में थोड़ा-थोड़ा करके बाँट दिया ॥५३-५७॥ फिर तुम वृन्दावन में प्रभा गोपी के साथ समागम करते देखे गये। मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे अन्तर्हित कर दिया ॥५८॥ किन्तु प्रभा अपना शरीर छोड़ कर सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हो गयी और उसकी देह तीक्ष्ण तेज में परिणत हो गयी ॥५९॥ रोते हुए तुमने प्रेम से उस तेज का विभाजन किया और लज्जा तथा मेरे भय के कारण, नेत्र, अग्नि, राजा, जनसमुदाय, देवता, चोरगण, नागगण, ब्राह्मण, मुनि, तपस्वी, सौभाग्यवती स्त्री और यशस्वी व्यक्तियों में बाँट दिया। इस प्रकार वह तेज सभी लोगों को देकर तुम पहले की भाँति रोने लगे ॥६०-६३॥ पुनः तुम रासमण्डल के अवसर पर बसन्त के समय का लेप लगाये और पुष्प माला धारण किये पुष्प की शय्या पर शान्ति गोपी के साथ (विहार करते) देखे गये थे ॥६४॥ विभो! उस रत्न जड़े हुए महल में रत्नप्रदीप के प्रकाश में तुम दोनों रत्नों के भूषणों से भूषित

---

१ क. ०स्युजनेभ्य०। २ ०भ्यो व्रतिनीभ्य०।

रत्नभूषितया सह ॥६५॥
रत्नप्रदीपैर्युक्तश्च रत्ननिर्मितमन्दिरे । रत्नभूषणभूषाढ्यो
त्वया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवत्यै सुवासितम्। तया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवांस्त्वं पुरा विभो ॥६६॥
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया। शान्तिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो ॥६७॥
ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह। संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा ॥६८॥
विश्वे विषयिणे किंचित्सत्त्वरूपाय विष्णवे। शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किंचिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो ॥६९॥
त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च वैष्णवेभ्यश्च किंचन। तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किंचन ॥७०॥
मया पूर्वं हि दृष्टस्त्वं गोप्या च क्षमया सह। सुवेषवान्माल्यवांश्च गन्धचन्दनसंयुतः ॥७१॥
रत्नभूषितया चारुचन्दनोक्षितया तया। सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचन्दनसंयुते ॥७२॥
श्लिष्टोऽभून्निद्रया सद्यः सुखेन नवसंगमात्। मया प्रबोधितौ सा च भवांश्च स्मरणं कुरु ॥७३॥
गृहीतं पीतवस्त्रं ते मुरली च मनोहरा। वनमाला कौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम् ॥७४॥
पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो। लज्जया कृष्णवर्णोऽभूदद्यापि च भवान्प्रभो ॥७५॥
क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता। ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥७६॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा। किंचिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किंचन ॥७७॥
धर्मिष्ठेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किंचन। तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पण्डितेभ्यश्च किंचन ॥७८॥
एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि। त्वद्गुणं बहुविस्तारं जानामि च परं प्रभो ॥७९॥

होकर एक दूसरे को सुवासित पान खिला रहे थे ॥६५-६६॥ प्रभो! उस समय मेरा शब्द सुनते ही तुमने उसे छिपा दिया किन्तु भयभीत होकर वह शान्ति अपनी देह त्याग कर तुममें लीन हो गयी ॥६७॥ और उसका शरीर श्रेष्ठ गुण में परिवर्तित हो गया। अनन्तर सप्रेम रुदन करते हुए तुमने उसका विभाजन करके विश्व में विषयी, सत्त्वरूप विष्णु और शुद्ध सत्त्व स्वरूपा महालक्ष्मी, तुम्हारे मन्त्र के उपासक वैष्णवगण, तपस्वीगण, धर्म और धर्म-निष्ठ व्यक्तियों को सौंप दिया ॥६८-७०॥ फिर मैंने क्षमा गोपी के साथ तुम्हें देखा था। तुम उस समय उत्तम वेष बनाये—पुष्पमाला पहने और सुगंधित चन्दन से चर्चित थे ॥७१॥ पुष्प और चन्दन से सुवासित उस शय्या पर तुम रत्नों के आभूषणों से विभूषित तथा सुन्दर चन्दन से चर्चित उस रमणी के साथ सुखविहार कर रहे थे; अनन्तर नवसमागम के कारण तुम दोनों शीघ्र ही निद्रामग्न हो गये। तब मैंने ही तुम दोनों को जगाया, यह स्मरण करो ॥७२-७३॥ उस समय मैंने तुम्हारा पीताम्बर, मनोहर मुरली, वनमाला, कौस्तुभमणि और अमूल्य रत्न-कुण्डल ले लिये। किन्तु प्रेमवश और सखियों के कहने से मैंने पुनः तुम्हें उन चीजों को लौटा दिया। प्रभो! उसी लज्जा के कारण आप कृष्ण वर्ण के हो गये, जो आज भी दिखाई दे रहे हैं ॥७४-७५॥ और क्षमा ने लज्जित होकर देह त्याग दी तथा पृथिवी में प्रवेश किया। उसका शरीर श्रेष्ठ गुणों में परिणत हो गया ॥७६॥ तब प्रेम का आँसू बहाते हुए तुमने उसका विभाग कर विष्णु, वैष्णवों, धर्मनिष्ठों, धर्म, दुर्बलों, तपस्वियों, देवताओं और पण्डितों को थोड़ा-थोड़ा करके बाँट दिया ॥७७-७८॥ प्रभो! यह सब मैंने तुम्हें सुना दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो? मैं तुम्हारे गुणों को बहुत विस्तार से जानती हूँ ॥७९॥

इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपङ्कजलोचना। गङ्गां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम् ॥८०॥
गङ्गा रहस्यं योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी। तिरोभूय सभामध्यात्स्वजलं प्रविवेश सा ॥८१॥
राधा योगेन विज्ञाय सर्वत्रावस्थितां च ताम्। पानं कर्तुं समारेभे गण्डूषात्सिद्धयोगिनी ॥८२॥
गङ्गा रहस्यं योगेन ज्ञात्वा वै सिद्धयोगिनी। श्रीकृष्णचरणाम्भोजं परमं शरणं ययौ ॥८३॥
गोलोकं चैव वैकुण्ठं ब्रह्मलोकादिकं तथा। ददर्श राधा सर्वत्र नैव गङ्गां ददर्श सा ॥८४॥
सर्वतो जलशून्यं च शुष्कं गोलोकपङ्कजम्। जलजन्तुसमहैश्च मृतदेहैः समन्वितम् ॥८५॥
ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः। मनवो मानवाः[1] सर्वे देवाः सिद्धास्तपस्विनः ॥८६॥
गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः। सर्वे प्रणेमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेः परम् ॥८७॥
वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम्। वरेशं च वरार्हं च सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥८८॥
निरीहं च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम्। निर्गुणं च निरुत्साहं निर्व्यूहं च निरञ्जनम् ॥८९॥
स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहविग्रहम्। सत्यस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥९०॥
परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम्। प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकंधराः ॥९१॥
सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकाङ्कितविग्रहाः। सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परं हरिम् ॥९२॥

इतना कहकर लालकमल के समान नेत्रों वाली राधा ने गंगा से कहना आरम्भ किया, जो लज्जित होने के कारण नीचे मुख किये खड़ी थी ॥८०॥ उस समय सिद्धयोगिनी गंगा योग द्वारा समस्त रहस्य जानकर सभा-मध्य से तिरोहित होकर अपने जल में प्रविष्ट हो गयीं ॥८१॥ अनन्तर सिद्धयोगिनी राधिका ने भी योग द्वारा गंगा को सब स्थानों में जलरूप से अवस्थित देखकर अंजलि से उठाकर पीना आरम्भ कर दिया ॥८२॥ इस रहस्य को सिद्ध योगिनी गंगा ने योगबल से जान कर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमल की शरण ली ॥८३॥ अनन्तर राधिका ने गोलोक, वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक आदि समस्त लोकों में सभी स्थान में ढूंढ़ा किन्तु गंगा कहीं भी दिखायी नहीं दीं ॥८४॥ चारों ओर जलशून्य दिखायी देता था। गोलोक का कमल भी सूख गया था। जल-जन्तुओं के समह अपने शरीर छोड़ चुके थे ॥८५॥ अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, सूर्य, मनु, मानव, समस्त देव, सिद्ध और तपस्वी—सभी कण्ठ, ओंठ और तालू के सूख जाने पर (विह्वल होकर) गोलोक में आये। प्रकृति से परे सर्वेश गोविन्द को प्रणाम किया। उत्तम, परमपूज्य, वरप्रद, सबसे महान्, वर के कारण, वर के प्रभु, वर देने योग्य, वरप्रद, सबके परम प्रभु, निरीह, निराकार, निर्लिप्त, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, अशरीरी, निरञ्जन, स्वेच्छामय, साकार, भक्तों के अनुग्रहार्थ प्रकट होने वाले, सत्यस्वरूप, सत्येश, साक्षीरूप, सनातन, श्रेष्ठ, श्रेष्ठाधीश्वर एवं परमात्मा ईश्वर को प्रणाम करके वे सब उनकी स्तुति करने लगे। भक्ति के कारण उनके कंधे झुक गए थे। उनकी वाणी गद्गद हो गयी थी। आँखों में आँसू भर आये थे। उनके सभी अंगों में पुलकावली छायी थी। सबने उन परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥८६-९२॥ उस समय ज्योतिरूप परब्रह्म, जो समस्त कारणों के कारण हैं,

---

१ क. मुनयः।

ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्। अमूल्यरत्नखचितचित्रसिंहासनस्थितम् ॥९३॥
सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना। गोपालिकानृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥९४॥
वल्गुवेषैः परिवृतं गोपैश्च शतकोटिभिः। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥९५॥
नवीननीरदश्यामं किशोरं पीतवाससम्। यथा द्वादशवर्षीयं बालं गोपालरूपिणम् ॥९६॥
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम्। स्वतेजसा परिवृतं सुखदृश्यं मनोहरम् ॥९७॥
कोटिकन्दर्पसौन्दर्यलीलालावण्यविग्रहम्। दृश्यमानं च गोपीभिः सस्मिताभिश्च संततम् ॥९८॥
भूषणैर्भूषिताभिश्च महारत्नविनिर्मितैः। पिबन्तीभिर्लोचनाभ्यां मुखचन्द्रं प्रभोर्मुदा ॥९९॥
प्राणाधिकप्रियतमाराधावक्षःस्थलस्थितम्। तया प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥१००॥
परिपूर्णतमं रासे ददृशुः सर्वतः सुराः। मुनयो मानवा[1] सिद्धास्तपसा च तपस्विनः ॥१०१॥
प्रहृष्टमानसाः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम्। परस्परं समालोच्य ते तमूचुश्चतुर्मुखम् ॥१०२॥
निवेदितुं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम्। ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा[2] स्थितं विष्णोस्तु दक्षिणे ॥१०३॥
वामतो वामदेवस्य[3] चागमत्कृष्णमुत्तमम्। परमानन्दयुक्तं च परमानन्दरूपकम् ॥१०४॥
सर्वं कृष्णमयं धाता चापश्यद्रासमण्डले। सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम् ॥१०५॥

अमूल्य रत्नों द्वारा खचित चित्र-विचित्र सिंहासन पर सुशोभित हो रहे थे ॥९३॥ गोपालगण श्वेत चामर से उनकी सेवा कर रहे थे और वे प्रसन्नमुख से मन्द मुसकान करते हुए गोपियों का नृत्य-गान देख रहे थे ॥९४॥ सुन्दर वेष बनाये हुए सौ करोड़ गोपगण उन्हें चारों ओर से घेर कर सेवा कर रहे थे। श्रीकृष्ण का शरीर चन्दन से चर्चित तथा रत्नों के भूषणों से भूषित था। उनका वर्ण नूतन घन की भाँति श्याम था। वे किशोरावस्था से युक्त तथा पीताम्बर से भूषित बारह वर्ष के गोपालबालक के रूप में विराजमान थे ॥९५-९६॥ करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा से पूर्ण, पुष्ट और श्रीसम्पन्न शरीर धारण करके वे अपने तेज को चारों ओर फैला रहे थे। उनका वह मनोहर रूप आनन्द से देखने योग्य था। करोड़ों कन्दर्पों के सौन्दर्य से बढ़े-चढ़े उस रूप को मुसकराती हुई गोपियाँ सतत देख रही थीं ॥९७-९८॥ महारत्नों के भूषणों से भूषित वे गोपियाँ प्रसन्न मुखमुद्रा में भगवान् श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का अपने नेत्रों से पान कर रही थीं। और प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा उनके वक्षःस्थल पर शोभा पा रही थीं। उनके दिये हुए सुवासित पान ये चबा रहे थे। ऐसे ये देवाधिदेव परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण रासमंडल में विराजमान थे। वहीं देवगण, मुनिगण, मानवगण, सिद्धों और तपस्वियों ने उनके दिव्य दर्शन प्राप्त किये। सबको महान् आश्चर्य हुआ ॥९९-१०१॥ अनन्तर आपस में विचार-विमर्श करके उन लोगों ने अपना अभिप्राय भगवान् जगदीश्वर से निवेदन करने के हेतु ब्रह्मा से कहा ॥१०२॥ ब्रह्मा देवों की बातें सुनकर विष्णु को दाहिने और महादेव को बायें करके भगवान् श्रीकृष्ण के समीप पहुँचे। उन्होंने उस रासमण्डल में सबको परमानन्दयुक्त और परमानन्दस्वरूप भगवान् कृष्णमय देखा। वहाँ सभी लोग समान वेष, समान सिंहासन पर स्थित, दो भुजाधारी,

---

१ ख. मनवः। २ क. ०त्वा विष्णु कृत्वा स द०। ३ क. ०देवं च जगाम कृष्णमन्दिरम्।

द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम्। मयूरपुच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम् ॥१०६॥
अतीव कमनीयं च सुन्दरं शान्तविग्रहम्। गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥१०७॥
वाससा यशसा[1] कीर्त्या मूर्त्या सुन्दरया समम्। परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥१०८॥
कः सेव्यः सेवको वेति दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः। क्षणं तेजः स्वरूपं च रूपराशियुतं क्षणम् ॥
निराकारं च साकारं ददर्श द्वैधलक्षणम् ॥१०९॥
एकमेव क्षणं कृष्णं राधया सहितं परम्। प्रत्येकासनसंस्थं च तया च सहितं क्षणम् ॥११०॥
राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपकलत्रकम्। किं स्त्रीरूपं च पुंरूपं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥१११॥
हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं धाता ध्यानेन चेतसा। चकार स्तवनं भक्त्या प्रणम्याथ त्वनेकधा ॥११२॥
ततः स चक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया। अपश्यत्कृष्णमेकं च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥११३॥
स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमण्डलमण्डितम्। पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुश्च पुनश्च ते ॥११४॥
विज्ञाय तदभिप्रायं तानुवाच सुरेश्वरः। सर्वा[2] मा सर्वयज्ञेशः सर्वेशः सर्वभावनः ॥११५॥

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते। इहाऽऽगच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः ॥११६॥
अगताः स्थ महाभागा गङ्गानयनकारणात्। गङ्गा मच्चरणाम्भोजे भयेन शरणं गता ॥११७॥

हाथ में मुरली लिये हुए, वनमाला से भूषित, (मुकुट में) मोरपंख लगाये, कौस्तुभमणि से सुशोभित, अत्यन्त सुन्दर एवं शान्त स्वरूप थे। तथा गुण, भूषण, रूप, तेज, अवस्था, तेज, वस्त्र, यश, आकृति, मूर्ति और सुन्दरता में सब एक जैसे थे। सभी व्यक्ति समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न तथा परिपूर्णतम थे ॥१०३-१०८॥ उन्हें देखकर कौन स्वामी है और कौन सेवक, इसका निर्णय करने में ब्रह्मा भी समर्थ न हो सके। क्योंकि क्षण मात्र में तेजःस्वरूप, क्षण में रूपराशियुक्त, क्षण में कहीं अकेले कृष्ण और कहीं राधा समेत तथा कहीं क्षण में राधासमेत कृष्ण प्रत्येक सिंहासनों पर बैठे दीख पड़ते थे ॥१०९-११०॥ राधारूप कृष्ण और कृष्णरूप राधा को देखकर कौन स्त्री रूप है और कौन पुरुष रूप, इस रहस्य को विधाता नहीं समझ सके ॥१११॥ तब उन्होंने अपने हृदय-कमल में स्थित भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान किया और भक्तिपूर्वक अनेक बार प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥११२॥ अनन्तर भगवान् की आज्ञा से ब्रह्मा ने नेत्र खोला तो राधाजी के वक्षःस्थल पर स्थित एक भगवान् श्रीकृष्ण ही उन्हें दिखायी पड़े ॥११३॥ जो अपने पार्षदों से घिरे हुए गोपीमण्डल से मण्डित थे। देवों ने उन्हें देखकर बार-बार प्रणाम और बार-बार स्तुति की ॥११४॥ उनके अभिप्राय को जानकर देवों के अधीश्वर, सबके आत्मा, समस्त यज्ञों के ईश, समस्त (चराचर) के ईश और और सबके स्रष्टा भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे कहा ॥११५॥

श्री भगवान् बोले—ब्रह्मन्, कमलापते! आओ, और महादेव! यहाँ आओ, तुम लोगों की निरन्तर कुशल हो ॥११६॥ महाभागो! तुम लोग गंगा को ले जाने के लिए यहाँ आये हो। किन्तु गंगा भयभीत होकर

१ख. ०सा कृत्या मू०। २क. ०र्वान्तरात्मा सर्वज्ञः स०।

राधेमां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्संनिधानतः। दास्यामीमां बहिः कृत्वा यूयं कुरुत निर्भयाम् ॥११८॥
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः। तुष्टाव सर्वाराध्यां तां राधां श्रीकृष्णपूजिताम् ॥११९॥
वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकंधरः। धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः ॥१२०॥

ब्रह्मोवाच

गङ्गा त्वदङ्गसंभूता प्रभोर्वै रासमण्डले। [1]युवयोर्द्रवरूपा या मुग्धयोः शंकरः स्वराट् ॥१२१॥
कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया। त्वन्मन्त्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम् ॥१२२॥
भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठे च चतुर्भुजः। भूगतायाः कलायाश्च लवणोदश्च वारिधिः ॥१२३॥
गोलोकस्थ च या राधा सर्वत्रस्था तथात्मिका। तदात्मिका त्वं देवेशि सर्वदा च तवाऽऽत्मजा ॥१२४॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता। बहिर्बभूव सा कृष्णपादाङ्गुष्ठनखाग्रतः ॥१२५॥
तत्रैव संवृता शान्ता तस्थौ तेषां च मध्यतः। उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥१२६॥
तत्तोयं ब्रह्मणा किंचित्स्थापितं च कमण्डलौ। किंचिद्दधार शिरसि चन्द्रार्धे चन्द्रशेखरः ॥१२७॥

हमारे चरणकमलों में छिपी हैं॥११७॥ राधिका मेरे समीप उसे देखकर उसका पान करना चाहती हैं। अतः मैं इसे तुम लोगों को दे रहा हूँ। तुम लोग इसे यहाँ से बाहर ले जाकर निर्भय बनाओ॥११८॥ भगवान् श्रीकृष्ण की बातें सुनकर हँसते हुए ब्रह्मा भगवान् की पूज्या और सब की आराध्या श्री राधिका की स्तुति करने लगे॥११९॥ चारों वेदों के प्रणेता चतुरानन ब्रह्मा ने भक्ति से कंधों को झुकाकर अपने चारों मुखों से स्तुति करके यह कहा॥१२०॥

ब्रह्मा बोले—देवी! वह गंगा आपके तथा भगवान् श्रीकृष्ण के अंग से समुत्पन्न है। आप दोनों महानुभाव रासमंडल में पधारे थे। शंकर के संगीत ने आपको मुग्ध कर दिया था। उसी अवसर पर यह द्रव रूप में प्रकट हो गई। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण का और आपका अंश होने के कारण यह आपकी प्रिय कन्या के सदृश है। यह आपके मन्त्र को ग्रहण करके आपका पूजन करे। इसके पति वैकुण्ठनिवासी चतुर्भुज विष्णु होंगे और अपनी कलामात्र से पृथ्वी पर जाने पर, लवण समुद्र इसका पति होगा॥१२१-१२३॥ देवेशि! जो राधा गोलोक में है वे सर्वत्र हैं। आप इसकी माता हैं और यह सर्वदा आपकी कन्या है॥१२४॥ ब्रह्मा की बात सुनकर राधा ने मन्दहास करती हुई अपनी स्वीकृति प्रदान की। अनन्तर गंगा भगवान् श्रीकृष्ण के चरण के अंगूठे के नखाग्र भाग से बाहर निकलकर वहीं उन लोगों के बीच घूंघट काढ़कर शान्त भाव से अवस्थित हो गईं। फिर जलस्वरूपा गंगा से उसकी अधिष्ठात्री देवी बाहर आयीं। उस जल के स्वल्प भाग को ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु में रखा और चन्द्रशेखर शिव ने अपने शिर के चन्द्रार्द्ध भाग में उस जल का कुछ अंश धारण कर लिया॥१२५-१२७॥ अनन्तर ब्रह्मा ने गंगा को श्री राधा के मंत्र की दीक्षा दी। साथ ही राधा के स्तोत्र,

---

१ख. द्रवरूपा च या रासमुग्धया शं०।

गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः। तत्स्तोत्रं कवचं पूजाविधानं ध्यानमेव च॥१२८॥
सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा। गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सती॥१२९॥
लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी। एता नारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने॥१३०॥
अथ तं सम्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच ह। सर्वं कालस्य वृत्तान्तं दुर्बोध्यमविपश्चिताम्॥१३१॥

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर। शृणु कालस्य वृत्तान्तं यदतीतं निशामय॥१३२॥
यूयं च येऽन्यदेवाश्च मुनयो मनवस्तथा। सिद्धास्तपस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः॥१३३॥
ते ते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते। जलप्लुतं सर्वविश्वमागतं प्राकृते लये॥१३४॥
ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते लीना अधुना मयि। वैकुण्ठं च विना सर्वं सजलं पश्य पद्मज॥१३५॥
गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं परम्। सब्रह्माण्डं विरचय पश्चाद्गङ्गा च यास्यति॥१३६॥
एवमन्येषु विश्वेषु सृष्ट्वा ब्रह्मादिकं पुनः। करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह॥१३७॥
मच्चक्षुषोर्निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत्। गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्ति च वेधसः॥१३८॥
इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरं मुने। देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः॥१३९॥

कवच, पूजाविधान, ध्यान तथा सामवेदानुसार पुरश्चरण का समस्त क्रम बता दिया। सती गंगा ने उन नियमों द्वारा राधा की पूजा करके वैकुण्ठ की यात्रा की॥१२८-१२९॥

मुने! इस प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्व को पावन करने वाली तुलसी—ये चारों देवियाँ हैं॥१३०॥ तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने मुसकराकर ब्रह्मा को काल का समस्त वृत्तान्त बताया, जो अपण्डितों के लिए दुर्बोध्य है॥१३१॥

श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मन्! विष्णो! और महेश्वर! तुम लोग गंगा को स्वीकार करो और काल का अतीत वृत्तान्त तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो!॥१३२॥ तुम लोग तथा अन्य देवगण एवं मुनिगण, मनुवृन्द और सिद्ध; तपस्वी आदि जितने यहाँ उपस्थित हैं, वे सब कालचक्ररहित गोलोक में जीवित रहेंगे, क्योंकि इस समय प्राकृत लय होने के कारण समस्त विश्व जलमग्न हो गया है॥१३३-१३४॥ ब्रह्मन्! विविध ब्रह्मांड में रहने वाले जितने ब्रह्मा आदि प्रधान देवता हैं, वे सब सम्प्रति मुझमें लीन हो गये हैं, क्योंकि वैकुण्ठ को छोड़कर सबके सब जलमग्न हैं, देखो!॥१३५॥ तुम लोग जाकर पुनः ब्रह्मलोक आदि समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि आरम्भ करो और पश्चात् गंगा भी वहाँ जायगी॥१३६॥ इसी प्रकार अन्य ब्रह्मांडों में भी मैं ब्रह्मा आदि की सृष्टि करके पुनः सबका सर्जन कर रहा हूँ। तुम देवताओं के साथ शीघ्र जाओ॥१३७॥ मेरे पलक भाँजने मात्र से ब्रह्मा की आयु समाप्त होती है, इस प्रकार कितने ब्रह्मा बीत चुके और कितने होंगे कहा नहीं जा सकता॥१३८॥ इस प्रकार राधिकानाथ श्रीकृष्ण जी कहकर अन्तःपुर में चले गये और देवगण जाकर पुनः प्रयत्नपूर्वक सृष्टि करने लगे॥१३९॥

गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके। ब्रह्मलोके तथाऽन्यत्र यत्र यत्र पुरा स्थिता॥१४०॥
तत्रैव सा गता गङ्गा चाऽऽज्ञया परमात्मनः। निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता॥१४१॥
इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्। सुखदं मोक्षदं सारं[1] किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१४२॥

इति श्रीब्र० महा० प्रकृति० नारदना० गङ्गोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारद उवाच

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी लोकपावनी। एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति॥१॥
गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुतं मया। कथं सा तस्य पत्नी च बभूव[2] ब्रूहि केशव॥२॥

श्रीनारायण उवाच

गङ्गा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाच्च गतो विधिः। गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम्॥३॥

फिर तो गंगा को गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक और ब्रह्मलोक तथा अन्यत्र भी जिस-जिस स्थान में रहने के लिए परमात्मा श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी थी, उस-उस स्थान के लिए उसने प्रस्थान कर दिया। भगवान् विष्णु के चरण कमल से निकलने के कारण गंगा को 'विष्णुपदी' कहा जाता है॥१४०-१४१॥ इस प्रकार मैंने गंगा का समस्त उपाख्यान तुम्हें सुना दिया, जो सुखदायक, मोक्षप्रद और तत्त्वरूप है अब पुनः क्या सुनना चाहते हो?॥१४२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखंड में गंगोपाख्यान नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त॥११॥

अध्याय १२

गंगोपख्यान-वर्णन

नारद बोले—लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और लोकपावनी तुलसी, ये चारों देवियाँ भगवान् विष्णु की ही पत्नियाँ हैं, और यह भी मैं सुन चुका हूँ कि गंगा वैकुण्ठ को चली गयीं। अतः हे केशव! वह (गंगा) उन (विष्णु) की पत्नी कैसे हुईं, यह बताने की कृपा करें॥१-२॥

नारायण बोले—गंगा के वैकुण्ठ में चले जाने पर उनके पीछे ब्रह्मा भी वहाँ पहुँचे और गंगा के साथ ही भगवान् जगदीश्वर को प्रणाम करके उनसे कहने लगे॥३॥

१क. साक्षात्किं। २क. ०भवेति च न श्रुतम्।

ब्रह्मोवाच

राधाकृष्णाङ्गसंभूता या देवी द्रवरूपिणी। तदधिष्ठातृदेवीयं रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥४॥
नवयौवनसंपन्ना सुशीला सुन्दरी वरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहंकारवर्जिता ॥५॥
यदङ्गसंभवा नान्यं वृणोतीयं च तं विना। तत्रापि मानिनी राधा महातेजस्विनी वरा ॥६॥
समुद्यता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम्। विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मनः ॥७॥
सर्वं विशुष्कं गोलोकं दृष्ट्वाऽहमगमं तदा। गोलोकं यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तलब्धये ॥८॥
सर्वान्तरात्मा सर्वं[1] नो ज्ञात्वाऽभिप्रायमेव च। बहिश्चकार गङ्गां च पादाङ्गुष्ठनखाग्रतः ॥९॥
दत्त्वाऽस्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम्। संप्रणम्य च राधेशं गृहीत्वाऽत्राऽऽगमं विभो ॥१०॥
गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम्। सुरेश्वरस्त्वं रसिको रसिकां रसभावनः ॥११॥
त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती। विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत् ॥१२॥
उपस्थितां च यः कन्यां न गृह्णाति मदेन च। तं विहाय महालक्ष्मी रुष्टा याति न संशयः ॥१३॥

ब्रह्मा बोले—श्रीराधा और भगवान् श्रीकृष्ण के अंग से यह जलमयी गंगा उत्पन्न होकर जल की अधिष्ठात्री देवी हैं। ये भूतल पर अनुपम रूपवती एवं नवीन युवावस्था से भूषित, सुशीला, परम सुन्दरी, शुद्ध सत्त्वस्वरूपा और क्रोध-अहंकार से रहित हैं ॥४-५॥ यह जिनके अंग से उत्पन्न हुई हैं उन्हें छोड़ किसी दूसरे को पति नहीं बनाना चाहतीं। किन्तु वहाँ की महातेजस्विनी राधा अत्यन्त मानिनी हैं ॥६॥ वे इनका पान कर लेने के लिए एकदम तैयार हो गयी थीं; पर भयभीत होते हुए भी इन्होंने बुद्धि से काम लिया—परमात्मा श्रीकृष्ण के चरण-कमल में ये प्रविष्ट हो गईं ॥७॥ समस्त विश्व को सूखा हुआ देखकर मैं भगवान् श्रीकृष्ण से समस्त वृत्तान्त जानने के लिए गोलोक में गया ॥८॥ वहाँ सबके अन्तरात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने मेरा सम्पूर्ण अभिप्राय जानकर अपने चरण के अंगूठे के नखाग्र भाग से गंगा को बाहर निकाला ॥९॥ विभो! अनन्तर मैंने गंगा को राधिका-मन्त्र प्रदान किया और इसके जल से ब्रह्मांड-गोलक को पूर्ण कराया। उपरान्त राधा और श्रीकृष्ण के चरणों में मस्तक झुकाकर इसे साथ लेकर यहाँ आया ॥१०॥ अतः गान्धर्व विवाह द्वारा इस सुरेश्वरी को आप अपनाइए। क्योंकि आप सुरेश्वर, रसिक, एवं रसिकों के रस के स्रष्टा हैं ॥११॥ फिर आप पुरुषों में रत्न हैं और यह सती स्त्रियों में रत्न मानी जाती है। और विदग्ध (चतुर पुरुष) का विदग्धा (कलापूर्ण नायिका) के साथ समागम सुखकर बताया गया है ॥१२॥ जो व्यक्ति पास आयी हुई कन्या को अभिमान के कारण स्वीकार नहीं करता है, उससे महालक्ष्मी रुष्ट होकर उसे छोड़कर चली जाती है, इसमें संशय नहीं ॥१३॥ जो पण्डित होता है, वह प्रकृति (रूपधारी स्त्री) का अपमान नहीं करता है; क्योंकि पुरुष गण प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं और स्त्रियाँ प्रकृति

---

१ क. सर्वज्ञो ज्ञा०।

यो भवेत्पण्डितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते। सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः ॥१४॥
त्वमेव भगवानाद्यो निर्गुणः प्रकृतेः परः। अर्धाङ्गो द्विभुजः कृष्णोऽप्यर्धाङ्गेन चतुर्भुजः ॥१५॥
कृष्णवामाङ्गसंभूता परमा राधिका पुरा। दक्षिणाङ्गात्स्वयं सा च वामाङ्गात्कमला यथा ॥१६॥
तेन त्वां सा वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसंभवा। स्त्रीपुंसौ वै तथैकाङ्गौ यथा प्रकृतिपूरुषौ ॥१७॥
इत्येवमुक्त्वा धाता च तां समर्प्य जगाम सः। गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम् ॥१८॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम्। रेमे रमापतिस्तत्र गङ्गया सहितो मुदा ॥१९॥
गां पृथ्वीं च गता यस्मात्स्वस्थानं पुनरागता। निर्गता विष्णुपादाच्च गङ्गा विष्णुपदी स्मृता ॥२०॥
मूर्छां संप्राप सा देवी नवसंगममात्रतः। रसिका सुखसंभोगाद्रसिकेश्वरसंयुता ॥२१॥
तद्दृष्ट्वा दुःखिता वाणी सापत्न्येर्ष्याविवर्जिता। नित्यमीर्ष्यति तां वाणी न च गङ्गा सरस्वतीम् ॥२२॥
गङ्गया सहितस्यैव तिस्रो भार्या रमापतेः। सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रो ह्यभवन्मुने ॥२३॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० गङ्गोपाख्यानं
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

की कलायें हैं॥१४॥ केवल आप भगवान् श्री हरि ही उस प्रकृति से परे निर्गुण प्रभु हैं। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण दो भागों में विभक्त हुए हैं। आधे से तो दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और उनका आधा अंग आप चतुर्भुज श्रीहरि के रूप में प्रकट हो गया ॥१५॥ पूर्वकाल में परमोत्तम राधिका भी भगवान् श्रीकृष्ण के बायें अंग से उत्पन्न हुई थीं। फिर वे दो रूपों में परिणत हुईं। दाहिने अंश में तो वे स्वयं रहीं और उनके वामांश से लक्ष्मी का प्राकट्य हुआ और उन्हीं की तरह गंगा भी प्रकट हुई। ॥१६॥ इसीलिए यह तुम्हारी देह से उत्पन्न होने के कारण तुम्हारा वरण करना चाहती है। क्योंकि प्रकृति और पुरुष की भांति स्त्री-पुरुष भी एक ही अंग हैं॥१७॥ ब्रह्मा इस प्रकार कहकर गंगा को उन्हें सौंप कर चले गये। पश्चात् स्वयं विष्णु ने गान्धर्व विवाह द्वारा गंगा को ग्रहण कर लिया॥१८॥ फिर पुष्पों की चंदन चर्चित उत्तम शय्या बनाकर विष्णु ने उस पर गंगा के साथ आनन्द से रमण किया ॥१९॥ गंगा के (पृथ्वी) पर जाकर पुनः अपने स्थान को लौट आने से उन्हें गंगा, और भगवान् विष्णु के पाद (चरण) से निकलने के कारण विष्णुपदी कहा जाता है ॥२०॥ इस प्रकार रसिकों में प्रधान भगवान् विष्णु के साथ समागम होने पर उस नवसंगममात्र से रसिका देवी गंगा मूर्च्छित हो गयीं॥२१॥ उनकी वह अवस्था देखकर सरस्वती को बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि उस समय सापत्न्य-ईर्ष्या (सवतिया डाह) नहीं थी। पर बाद में सरस्वती गंगा से नित्य ईर्ष्या करने लगीं; यद्यपि गंगा सरस्वती से कभी ईर्ष्या नहीं करती थीं॥२२॥ मुने! इस प्रकार रमापति विष्णु की गंगा समेत तीन पत्नियाँ हुईं। बाद में तुलसी सहित चार पत्नियाँ हो गईं॥२३॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में गंगोपाख्यान नामक
बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह। तुलसी कुत्र संभूता का वा सा पूर्वजन्मनि ॥१॥
कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्या तपस्विनी। केन वा तपसा सा च संप्राप प्रकृतेः परम् ॥२॥
[1]निर्विकल्पं निरीहं च सर्वसाक्षिस्वरूपकम्। नारायणं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥३॥
सर्वाराध्यं च सर्वेशं सर्वज्ञं[2] सर्वकारणम्। सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम् ॥४॥
कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह। कथं साऽप्यसुरग्रस्ता संबभूव तपस्विनी ॥५॥
संदिग्धं मे मनो लोलं प्रेरयेन्मां मुहुर्मुहुः। छेत्तुमर्हसि संदेहं सर्वसंदेहभञ्जन ॥६॥

श्रीनारायण उवाच

मनुश्च दक्षसावर्णिः पुण्यवान्वैष्णवः शुचिः। यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः ॥७॥
तत्पुत्रो धर्मसावर्णिर्धर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः। तत्पुत्रो विष्णुसावर्णिर्वैष्णवश्च जितेन्द्रियः ॥८॥
तत्पुत्रो देवसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः। तत्पुत्रो राजसावर्णिर्महाविष्णुपरायणः ॥९॥

अध्याय १३

तुलसी के कथा-प्रसंग में राजा वृषध्वज का चरित्र-वर्णन

नारद बोले—पतिव्रता तुलसी भगवान् नारायण की प्रेयसी कैसे बनी? कहाँ उसका जन्म हुआ? वह पूर्व जन्म में कौन थी? किसके कुल में उसने जन्म ग्रहण किया? वह तपस्विनी किसकी कन्या थी? और किस तप के प्रभाव से उसने प्रकृति से परे, निर्विकल्प, निरीह, सबके साक्षीरूप, नारायण, परब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, सबके आराध्य देव, सबके ईश, सर्वज्ञ, सबके कारण, सर्वाधार, सबके स्वरूप और सबके परिपालक श्रीहरि को पति-रूप में प्राप्त किया? ॥१-४॥ ऐसी देवी को वृक्ष क्यों होना पड़ा? और वह तपस्विनी देवी कैसे असुर के चंगुल में फँस गई? ॥५॥ हे समस्त सन्देह के भञ्जन करने वाले, मेरे इस सन्देह का नाश करें, क्योंकि मेरा चपल मन बार-बार संदेह में पड़ जाता है ॥६॥

नारायण बोले—दक्ष सावर्णि नामक मनु पुण्यात्मा, विष्णु के उपासक, सदाचारी, यशस्वी, कीर्तिमान् और भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए थे ॥७॥ उनके पुत्र धर्मसावर्णि, धर्मात्मा, विष्णु-भक्त और सदाचारी हुए उनके पुत्र विष्णुसावर्णि, भगवान् विष्णु के उपासक और जितेन्द्रिय हुए ॥८॥ उनके पुत्र देव सावर्णि भगवान् विष्णु के महान् भक्त हुए और उनके पुत्र राजसावर्णि महाविष्णु के परम उपासक हुए ॥९॥ उनके

१क. ०विकारं नि०। २क. ०र्वमङ्गलकारकम्।

वृषध्वजश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः। यस्याऽऽश्रमे स्वयं शंभुरासीद्दैवयुगत्रयम् ॥१०॥
पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिञ्छिवस्य च। न च नारायणं मेने न च लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥११॥
पूजां च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः। भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तो[1]ऽत्यजन्नृपः ॥१२॥
माघे सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः। यज्ञं च विष्णुपूजां च निनिन्दे न चकार सः ॥१३॥
न कोऽपि देवो भूपेन्द्रं शशाप शिवकारणात्। भ्रष्टश्रीर्भव भूपेति चाशपत्तं दिवाकरः ॥१४॥
शूलं गृहीत्वा तं सूर्यं धृतवाञ्छंकरः स्वयम्। पित्रा सार्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१५॥
शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा। ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठं च ययौ भिया ॥१६॥
शूलं गृहीत्वा तत्रापि धृतवाञ्छंकरो रविम्। ब्रह्मकश्यपमार्तण्डाः संत्रस्ताः शुष्कतालुकाः ॥१७॥
नारायणं च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया। मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च पुनः पुनः ॥१८॥
[2]सर्वे निवेदनं चक्रुर्भियस्ते कारणं हरौ
॥१९॥
नारायणश्च कृपयाऽभयं तेभ्यो ददौ मुने। स्थिरा भवत हे भीता भयं किं वो मयि स्थिते ॥२०॥
स्मरन्ति ये यत्र यत्र मां विपत्तौ भयान्विताः। तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥२१॥
पाताऽहं जगतां देवाः कर्ताऽहं सततं सदा। स्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः ॥२२॥

पुत्र वृषध्वज हुए, जो भगवान् शंकर के परम उपासक थे। उनके आश्रम में स्वयं भगवान् शंकर ने तीन दैवयुग तक निवास किया था ॥१०॥ उस राजा में शिव का स्नेह पुत्र से भी बढ़कर हो गया था; इसलिए वह राजा नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती को कभी नहीं पूजता था ॥११॥ उसने सम्पूर्ण देवों की पूजा त्याग दी तथा शिव-निरत होकर उसने भाद्रपद में महालक्ष्मी-पूजन एवं माघ मास में सरस्वती-पूजन भी त्याग दिये। इसी प्रकार यज्ञ और विष्णु-पूजन भी उसने छोड़ दिये तथा उनकी निन्दा की ॥१२-१३॥ शंकर के कारण कोई भी देवता उस राजेन्द्र को शाप नहीं देता था। किन्तु एक बार सूर्य ने इस राजा को शाप दे दिया—'तुम्हारी श्री नष्ट हो जाये।' इस पर क्रुद्ध होकर भगवान् शंकर स्वयं शूल लेकर सूर्य पर टूट पड़े। तब सूर्य अपने पिता (कश्यप) के साथ ब्रह्मा की शरण में गए ॥१४-१५॥ हाथ में त्रिशूल लिए शंकर भी क्रोधावेश में ब्रह्मलोक पहुँच गये। इससे भयभीत होकर ब्रह्मा सूर्य को आगे करके वैकुण्ठ चले गये ॥१६॥ शूल लिए शिव ने वहाँ भी पहुँच कर सूर्य को पकड़ लिया। यह देखकर ब्रह्मा, कश्यप तथा सूर्य अत्यन्त संत्रस्त हुए, उनके तालू सूख गए ॥१७॥ भय से उन्होंने सर्वेश भगवान् नारायण की शरण ली। वहाँ पहुँच कर उन्होंने शिर से प्रणाम करके उनकी बार-बार स्तुति की ॥१८॥ अनन्तर उन लोगों ने भगवान् विष्णु से अपने भय का कारण निवेदन किया ॥१९॥ मुने! भगवान् विष्णु ने अत्यन्त कृपा करके उन्हें अभयदान दिया—हे भीरु! स्थिर हो जाओ। मेरे रहते तुम्हें कोई भय नहीं ॥२०॥ विपत्ति आने पर भयभीत प्राणी जहाँ कहीं मेरा स्मरण करता है, वहीं मैं चक्रहस्त पहुँचकर उसकी रक्षा करता हूँ ॥२१॥ देवो! मैं ही इस जगत् का सदा कर्ता और पालयिता हूँ। ब्रह्मा के रूप से मैं इसकी सृष्टि करता हूँ तथा शिवरूप से संहार

१क. ०त्तो बभञ्ज ह।　　२क. सर्वं नि०।

शिवोऽहं त्वमहं चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः। विधाय नानारूपं च कुर्यां सृष्टयादिकाः क्रियाः ॥२३॥
यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः। अद्यप्रभृति वो नास्ति मद्वराच्छंकराद्भयम् ॥२४॥
आशुतोषः स भगवाञ्छंकरश्च[1] सतां गतिः। भक्ताधीनश्च भक्तेशो भक्तात्मा भक्तवत्सलः ॥२५॥
सुदर्शनं शिवश्चैव मम प्राणाधिकप्रियौ। ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्नयोः परः ॥२६॥
शक्तः स्रष्टुं महादेवः सूर्यकोटिं च लीलया। कोटिं च ब्रह्मणामेवं किमसाध्यं च शूलिनः ॥२७॥
बाह्यज्ञानं तत्र किंचिद्ध्यायतो मां दिवानिशम्। मन्नाम मद्गुणं भक्त्या पञ्चवक्त्रेण गीयते ॥२८॥
अहमेवं चिन्तयामि तत्कल्याणं दिवानिशम्। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥२९॥
शिवस्वरूपो भगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता। शिवो भवति यस्माच्च शिवं तेन विदुर्बुधाः ॥३०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्छंकरः स्वयम्। शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपङ्कजलोचनः ॥३१॥
अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकंधरः। ननाम भक्त्या तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्परम् ॥३२॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालंकारभूषितम्। किरीटिनं कुण्डलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥३३॥
नवीननीरदश्यामं सुन्दरं च चतुर्भुजम्। चतुर्भुजैः सेवितं च श्वेतचामरवायुना ॥३४॥

करता हूँ ॥२२॥ मैं ही त्रिगुणात्मक रूप से शिव, ब्रह्मा तथा सूर्य हूँ। इस प्रकार मैं नाना रूप धारण करके सृष्टि आदि क्रियायें करता हूँ ॥२३॥ इसलिए तुम लोग जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा, भय दूर हो जायगा। मेरे वरदान द्वारा आज से तुम्हें शंकर का भय नहीं होगा ॥२४॥ भगवान् शिव आशुतोष, सज्जनों के रक्षक, भक्तों के अधीन, भक्तों के स्वामी, भक्तों के आत्मा एवं भक्तों के प्रिय हैं ॥२५॥ ब्रह्मन्! यह सुदर्शन चक्र और शिव, ये दोनों मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। समस्त ब्रह्माण्डों में इन दोनों से अधिक दूसरा तेजस्वी नहीं है ॥२६॥ महादेव लीलापूर्वक करोड़ों सूर्यों की सृष्टि करने में समर्थ हैं और इसी प्रकार वे करोड़ों ब्रह्माओं की भी सृष्टि कर सकते हैं। शंकर के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है ॥२७॥ दिनरात मेरा ही ध्यान करने के कारण उन्हें बाह्य ज्ञान कुछ नहीं रहता है। वे अपने पाँचों मुखों से भक्तिपूर्वक मेरा ही नाम गुण गाया करते हैं ॥२८॥ इसीलिए मैं भी दिनरात उनके कल्याण का चिन्तन करता हूँ। क्योंकि जो जिस प्रकार से मुझसे मिलता है, मैं भी उसी प्रकार उसकी सेवा में तत्पर रहता हूँ ॥२९॥ भगवान् शिवस्वरूप होकर शिव (कल्याण) के अधिष्ठातृ देवता हैं। क्योंकि जिससे शिव (कल्याण) प्राप्त होता है, विद्वानों ने उसे शिव (कल्याणमूर्ति) कहा है ॥३०॥ इतने में स्वयं शंकर वहाँ आ पहुँचे। उनके हाथ में त्रिशूल था, आँखें रक्तकमल के समान लाल थीं और वे वृषभ पर आरूढ़ थे ॥३१॥ शीघ्रता से बैल की पीठ पर से उतर कर उन्होंने भक्ति से अपने कन्धे को झुका लिया और शान्त एवं परात्पर भगवान् लक्ष्मीकान्त को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥३२॥ उस समय भगवान् विष्णु रत्नों के सिंहासन पर सुखासीन, रत्नों के अलंकारों से भूषित, किरीट-कुण्डलों से अलंकृत तथा चक्र एवं वनमाला धारण किये हुए थे ॥३३॥ वे नवीन मेघके समान श्याम वर्ण, सुन्दर, चतुर्भुज तथा चार भुजाओं वाले पार्षदों के द्वारा श्वेत चामर से सुसेवित

१क. ०करः शंकरः सताम्।

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा। लक्ष्मीप्रदत्ततांबूलं भुक्तवन्तं च नारद॥३५॥
विद्याधरीनृत्यगीतं शृण्वन्तं सस्मितं मुदा। ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥३६॥
तं ननाम महादेवो ब्रह्माणं च ननाम सः। ननाम सूर्यो भक्त्या च संत्रस्तश्चन्द्रशेखरम्॥३७॥
कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम च। शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने॥३८॥
सुखासने सुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम्। श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः॥३९॥
अक्रोधं सत्त्वसंसर्गात्प्रसन्नं सस्मितं मुदा। स्तूयमानं पञ्चवक्त्रैः परं नारायणं विभुम्॥४०॥
तमुवाच प्रसन्नात्मा प्रसन्नं सुरसंसदि। पीयूषतुल्यं मधुरं वचनं सुमनोहरम्॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

अत्यन्तमुपहास्यं च शिवप्रश्नं शिवेऽशिवम्। लौकिकं वैदिकं चैव त्वां पृच्छामि तथाऽपि शम्॥४२॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्। संपत्प्रश्नं तपःप्रश्नमयोग्यं त्वां च सांप्रतम्॥४३॥
ज्ञानाधिदेवे सर्वज्ञे ज्ञानं पृच्छामि किं वृथा। निरापदि विपत्प्रश्नमलं मृत्युंजये हरे॥४४॥
[1]त्वामेवाऽऽगमने प्रश्नमलं स्वाश्रयस्यागमे। [2]आगतोऽसि कथं वेगादित्युवाच रमापतिः॥४५॥

हो रहे थे॥३४॥ नारद! उनका सर्वांग शरीर चन्दन से चर्चित तथा पीताम्बर से सुशोभित था। वे लक्ष्मी का दिया हुआ ताम्बूल खा रहे थे॥३५॥ तथा मन्द मुसुकान करते हुए प्रसन्नता से विद्याधरियों के संगीत सुन रहे थे। ऐसे परमात्मा ईश्वर भक्तों पर कृपा करने के लिए ही शरीर धारण करते हैं॥३६॥ महादेव ने उन्हें और ब्रह्मा दोनों को नमस्कार किया। तब सूर्य ने चन्द्रशेखर (शिव) को डरते-डरते भक्तिपूर्वक नमस्कार किया॥३७॥ कश्यप जी ने भी महान् भक्ति से उनकी स्तुति और नमस्कार किया। अनन्तर शिव सर्वाधीश्वर विष्णु की भलीभाँति स्तुति करके सुखासनपर विराजमान हो गये॥३८॥ तब सुखासन पर आराम से बैठे हुए चन्द्रशेखर को अत्यन्त श्रान्त देखकर विष्णु के पार्षदों ने अपने श्वेत चामर से उनकी सेवा आरम्भ कर दी॥३९॥ सत्त्व (गुण) के संसर्ग से क्रोध-रहित, प्रसन्न, मुसकराते हुए और अपने पाँचों मुखों द्वारा श्रेष्ठ एवं व्यापक नारायण की स्तुति करने वाले शिव से उस देवसभा में प्रसन्नात्मा विष्णु ने अमृत के समान अत्यन्त मनोहर एवं मधुर वचन कहा॥४०-४१॥

भगवान् (विष्णु) बोले—शिव (कल्याणरूप) से शिव (कल्याण) का प्रश्न करना यद्यपि अति उपहास की बात है, तथापि लोक और वेद के अनुसार कल्याण का प्रश्न पूछ रहा हूँ॥४२॥ क्योंकि तुम तपस्या का फल प्रदान करते हो और समस्त सम्पदाओं के प्रदाता हो, अतः सम्प्रति तुमसे सम्पत्ति और तप का भी प्रश्न करना अनुचित है॥४३॥ इसी प्रकार ज्ञान के अधीश्वर और सर्वज्ञ से ज्ञान का प्रश्न करना भी व्यर्थ है। आपत्ति-रहित मृत्युजेता शिव से विपत्ति का भी प्रश्न करना व्यर्थ है॥४४॥ फिर अपने आधार को प्राप्त करने वाले तुम्हीं से आगमन का प्रश्न करना व्यर्थ है। (तब मेरा यह प्रश्न है कि) इतने वेग से क्यों आये हो?॥४५॥

१ख. ०मेव वाग्धनं प्र०। २क. ०गतस्तत इत्येव वद कोपस्य कारणम्।

श्रीमहादेव उवाच

वृषध्वजं च मद्भक्तं मम प्राणाधिकप्रियम्। सूर्यः शशाप इति मे हेतुरागमकोपयोः ॥४६॥
पुत्रवात्सल्यशोकेन सूर्यं हन्तुं समुद्यतः। स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च ससूर्यश्च विधिस्त्वयि ॥४७॥
त्वां ये शरणमापन्ना ध्यानेन वचसाऽपि वा। निरापदस्ते निःशंका जरा मृत्युश्च तैर्जितः ॥४८॥
साक्षाद्ये शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः। हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदा सदा ॥४९॥
किं मे भक्तस्य भविता तन्मे ब्रूहि जगत्प्रभो। श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्यशापेन हेतुना ॥५०॥

श्रीभगवानुवाच

कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः। वैकुण्ठे घटिकार्धेन[1] शीघ्रं याहि नृपालयम् ॥५१॥
वृषध्वजो मृतः कालाद्दुर्निवार्यात्सुदारुणात्। [2]हंसध्वजश्च तत्पुत्रो मृतः सोऽपि श्रिया हतः ॥५२॥
तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ। हतश्रियौ सूर्यशापात्तौ वै परमवैष्णवौ ॥५३॥
राज्यभ्रष्टौ श्रिया भ्रष्टौ कमलातापसावुभौ। तयोश्च भार्ययोर्लक्ष्मीः कलया च जनिष्यति ॥५४॥
संपद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः। मृतस्ते सेवकः शंभो गच्छ यूयं च गच्छत ॥५५॥

महादेव बोले—मेरे भक्त और मेरे प्राणों से अधिक प्रिय वृषध्वज को सूर्य ने शाप दिया है। इसी कारण मैं क्रुद्ध हुआ और यहाँ तक आ गया ॥४६॥ पुत्र-वात्सल्य के शोक से मैं सूर्य को मारने के लिए तैयार हो गया था, जिससे वह (भागकर) ब्रह्मा की शरण में पहुँचा और उसे लेकर ब्रह्मा आपकी शरण में आये हैं ॥४७॥ ध्यान द्वारा अथवा वाणी द्वारा ही जो आपकी शरण में आते हैं, वे सर्वथा आपत्तियों से मुक्त और जरा एवं मृत्यु से रहित हो जाते हैं ॥४८॥ फिर जो साक्षात् आपके शरणागत हैं, उनका फल मैं क्या बताऊँ? विष्णु का केवल स्मरण भी सदा अभयप्रद और समस्त-मंगल-प्रदायक होता है ॥४९॥ जगत्प्रभो! सूर्य के शाप से मेरा भक्त श्रीहत और मूढ़ हो गया है, अब उसका क्या होगा? यह बताने की कृपा करें ॥५०॥

भगवान् (विष्णु) बोले—दैव की प्रेरणा से बहुत समय बीत गया। इक्कीस युग समाप्त हो गए। यद्यपि वैकुंठ में अभी आधी घड़ी का समय बीता है। अतः अब तुम उस राजा के यहाँ जाओ। अत्यन्त दारुण और दुर्निवार काल ने वृषध्वज को अपना ग्रास बना लिया है। उसका पुत्र हंसध्वज भी श्रीहत होकर मर चुका है ॥५१-५२॥ उसके धर्मध्वज और कुशध्वज नामक दो परम वैष्णव महाभाग्यवान् पुत्र भी सूर्य के शाप से हतश्रीक हो गये हैं कमला (लक्ष्मी) के उपासक वे दोनों तपस्वी, श्रीभ्रष्ट तथा राज्यभ्रष्ट भी हो गये हैं। अतः जब लक्ष्मी अपनी कला से उन दोनों की पत्नियों से अवतार लेंगी तब वे दोनों राजकुमार श्रीसम्पन्न हो जायँगे। शम्भो! तुम्हारा भक्त मर चुका है। अतः तुम यहाँ से जाओ। देवताओ! तुम लोग भी यहाँ से प्रस्थान करो ॥५३-५५॥

१क. ०न यात शीघ्रं नृ०। २क. रथध्व०।

इत्युक्त्वा च सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यन्तरं गतः। देवा जग्मुश्च संहृष्टाः स्वाश्रमं परया मुदा ॥५६॥
शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमो ययौ ॥५७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्यानं नाम
त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

नारायण उवाच

लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने। प्रत्येकं वरमिष्टं च संप्रापतुरभीप्सितम् ॥१॥
महालक्ष्म्या वरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः। धनवन्तौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ ॥२॥
कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती। सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम् ॥३॥
सा च भूतलसंबन्धाज्ज्ञानयुक्ता बभूव ह। कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहे ॥४॥
वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका। तस्मात्तां ते वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५॥

इतना कहकर भगवान् विष्णु लक्ष्मी समेत सभा से उठे और अन्तःपुर में चले गये। देवता गण भी अत्यन्त हर्षित होकर प्रसन्न मन से अपने-अपने आश्रमों में चले गये। अनन्तर परिपूर्णतम शिव उसी क्षण तप करने के लिए चल पड़े ॥५६-५७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसी-उपाख्यान नामक
तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

अध्याय १४

वेदवती की कथा तथा सीता और द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त

नारायण बोले—मुने! उन दोनों (धर्मध्वज और कुशध्वज) ने अपनी उग्र तपस्या द्वारा लक्ष्मी की आराधना करके अपने प्रत्येक अभीष्ट को प्राप्त कर लिया ॥१॥ महालक्ष्मी के वरदान से वे दोनों धर्मध्वज और कुशध्वज पृथ्वीपति (राजा), धनवान् और पुत्रवान् हो गये ॥२॥ कुछ काल बीतने पर कुशध्वज की पत्नी परमसाध्वी मालावती ने एक सती कन्या को उत्पन्न किया, जो लक्ष्मी का अंश थी ॥३॥ वह भूमिष्ठ होते ही ज्ञान से सम्पन्न हो गयी। उस कन्या ने जन्म लेते ही सूतिका-गृह में स्पष्ट स्वर से वेद-मन्त्रों का उच्चारण किया और उठकर खड़ी हो गई ॥४॥ इसीलिए विद्वान्-पुरुष उसे 'वेदवती' कहते हैं ॥५॥ उत्पन्न होने पर उसने भलीभाँति स्नान किया और तप के हेतु वन की ओर चल दिया। सभी लोगों के द्वारा यत्नपूर्वक निषेध करने पर भी नारायणपरायणा होने

जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम्। सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥६॥
एकमन्वन्तरं चैव पुष्करे च तपस्विनी। अत्युग्रां वै तपस्यां तु लीलया च चकार सा ॥७॥
तथाऽपि[1] पुष्टा न कृशा नवयौवनसंयुता। शुश्राव खे च सहसा सा वाचमशरीरिणीम् ॥८॥
जन्मान्तरे ते भर्ता च भविष्यति हरिः स्वयम्। ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुन्दरि ॥९॥
इति श्रुत्वा तु सा रुष्टा चकार च पुनस्तपः। अतीव निर्जनस्थाने पर्वते गन्धमादने ॥१०॥
तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वस्य समुवास सा। ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥११॥
दृष्ट्वा साऽतिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौ किल। सुस्वादु फलमूलं च जलं चापि सुशीतलम् ॥१२॥
तच्च भुक्त्वा स पापिष्ठश्चावात्सीत्तत्समीपतः। चकार प्रश्नमिति तां का त्वं कल्याणि चेति च ॥१३॥
तां च दृष्ट्वा वरारोहां [2]पीनोन्नतपयोधराम्। शरत्पद्मनिभास्यां च सस्मितां सुदतीं सतीम् ॥१४॥
मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीडितः। तां करेण समाकृष्य संभोगं कर्तुमुद्यतः ॥१५॥
सा सती कोपदृष्ट्या च स्तम्भितं तं चकार ह। स जडो हस्तपादैश्च किञ्चिद्वक्तुं न च क्षमः ॥१६॥
तुष्टाव मनसा देवीं पद्मांशां पद्मलोचनाम्। सा तत्स्तवेन संतुष्टा प्राकृतं तं मुमोच ह ॥१७॥
शशाप च मदर्थे त्वं विनश्यसि सबान्धवः। स्पृष्टाऽहं च त्वया कामाद्विसृजाम्यवलोकय ॥१८॥

के कारण वह नहीं रुक सकी ॥६॥ यद्यपि उस तपस्विनी ने पुष्कर क्षेत्र में एक मन्वन्तर के समय तक अत्यन्त उग्र तपस्या लीलापूर्वक सम्पन्न की तो भी वह दुर्बल नहीं हुई अपितु पुष्ट और नवयौवन से विभूषित रही। उसने सहसा आकाश में आकाशवाणी सुनी—'हे सुन्दरि! जन्मान्तर में भगवान् विष्णु स्वयं तुम्हें पति रूप में मिलेंगे। ब्रह्मादि देवों के लिए भी जो दुराराध्य हैं, वे तुम्हारे पति होंगे।' ॥७-९॥ यह सुन कर उसने रुष्ट होकर गन्धमादन पर्वत के अति निर्जन स्थान में पुनः तप करना आरम्भ किया।।१०॥ वहाँ चिरकाल तक तप कर के विश्वस्त हो वहीं रहने लगी। एक दिन उसने अपने सामने दुर्निवार रावण को देखा ॥११॥ अनन्तर उसने अतिथि-सेवा के रूप में पाद्य (पादप्रक्षालनार्थ जल), अत्यन्त स्वादिष्ठ फल और शीतल जल उसे प्रदान किया। वह पापी रावण उसे खा-पीकर वहीं रह गया और उससे पूछने लगा कि—'हे कल्याणि! तुम कौन हो।' ॥१२-१३॥ उस सुन्दरी सती साध्वी कन्या को, जिसके स्तन स्थूल और उन्नत थे, मुख शरत्काल के कमल की तरह मनोहर था, मुख पर मंद मुसकान की छटा छायी रहती थी और दाँत आकर्षक थे, देख कर रावण कामबाण से पीड़ित तथा दीन होकर मूर्च्छित हो गया। फिर हाथ से उसे खींच कर संभोग करने के लिए तैयार हो गया ॥१४-१५॥ यह देख कर उस सती ने क्रुद्ध होकर उसे स्तम्भित कर दिया, जिससे वह जड़ की भाँति निश्चेष्ट हो गया—न हाथ पैर हिला सकता था और न कुछ बोल ही सकता था ॥१६॥ अनन्तर उसने कमला के अंश से उत्पन्न होने वाली उस कमललोचना की मानसिक स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उस कन्या ने उस मूर्ख को मुक्त कर दिया ॥१७॥ और शाप भी दिया कि—मेरे ही लिए तुम सपरिवार विनष्ट हो जाओगे। तुमने कामातुर होकर मेरा स्पर्श कर लिया है। अतः तुम्हारे

---

१ क. ०पि सा न च क्लिष्टा न०। २ क. पीनश्रेणीप०।

इत्युक्त्वा सा च योगेन देहत्यागं चकार ह। गङ्गायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणो ययौ ॥१९॥
अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वा मयाऽधुना। इति संचिन्त्य संस्मृत्य विललाप पुनः पुनः ॥२०॥
सा च कालान्तरे साध्वी बभूव जनकात्मजा। सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः ॥२१॥
महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वजन्मनः। लेभे रामं च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥२२॥
संप्राप्य तपसाऽऽराध्य[1] स्वामिनं च जगत्पतिम्। सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी ॥२३॥
जातिस्मरा[2] स्म स्मरति तपसश्च क्रमं पुरा। सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखं चापि सुखं फले ॥२४॥
नानाप्रकारविभवं चकार सुचिरं सती। संप्राप्य सुकुमारं तमतीव[3] नवयौवनम् ॥२५॥
गुणिनं रसिकं शान्तं कान्तवेषमनुत्तमम्। स्त्रीणां मनोज्ञं[4] रुचिरं तथा लेभे यथेप्सितम् ॥२६॥
पितुर्वचः पालनार्थं सत्यसंधो रघूत्तमः। जगाम काननं पश्चात्कालेन च बलीयसा ॥२७॥
तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च। ददर्श तत्र वह्निं च विप्ररूपधरं हरिः ॥२८॥
तं रामं दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह। उवाच किञ्चित्सत्येष्टं सत्यं सत्यपरायणः ॥२९॥

सामने ही मैं इस शरीर का त्याग कर रही हूँ ॥१८॥ ऐसा कह कर उसने योग द्वारा अपनी देह को त्याग दिया। पश्चात् रावण ने उस शव को गंगा में डाल कर अपने घर का रास्ता लिया ॥१९॥ 'अहो ! मैंने कैसा आश्चर्य देखा और मैंने इस समय कैसा (अनुचित) कार्य किया' ऐसा सोचकर स्मरण करके वह रावण बार-बार विलाप करने लगा ॥२०॥ वही साध्वी कुमारी कालान्तर में राजा जनक की पुत्री सीता देवी हुई, जिसके निमित्त रावण मारा गया ॥२१॥ उस महातपस्विनी ने पूर्व जन्म की तपस्या के कारण परिपूर्णतम भगवान् राम को पति रूप में प्राप्त किया ॥२२॥ उस सुन्दरी रमा ने तप द्वारा जगत्पति राम को स्वामी के रूप में पाकर सेवा करती हुई चिरकाल तक उनके साथ रमण किया ॥२३॥ उसे पूर्व जन्म की बातें स्मरण थीं। फिर भी पूर्व समय में तपस्या से जो कष्ट हुआ था, उस पर उसने ध्यान नहीं दिया। वर्तमान सुख के सामने उसने सम्पूर्ण पूर्व क्लेशों की स्मृति का त्याग कर दिया ॥२४॥ अत्यन्त सुकुमार, अतिनव-यौवन-सम्पन्न, गुणी, रसिक, शान्तस्वभाव, अत्यन्त कमनीय, स्त्रियों के लिए चित्ताकर्षक तथा मनोऽभिलषित स्वामी को पाकर वेदवती ने चिरकाल तक नाना प्रकार के सुखों का उपभोग किया ॥२५-२६॥ सत्यप्रतिज्ञ एवं रघुश्रेष्ठ भगवान् राम, कुछ दिनों के उपरान्त पिता के वचन की रक्षा करने के लिए वन में चले गए ॥२७॥ अनन्तर बलवान् काल के वश में होकर वे सीता-लक्ष्मण के साथ समुद्र के निकट ठहरे। वहाँ भगवान् ने विप्ररूपधारी अग्नि को देखा ॥२८॥ भगवान् राम को दुःखी देखकर वह ब्राह्मण रूपधारी अग्नि स्वयं दुःखी हो गया और सत्यपरायण होने के नाते सत्यप्रिय और सत्यमूर्ति (राम) से कुछ कहने लगा ॥२९॥

---

१ क. राध्यं मुराराध्यं च०। २ क. ०रा च स्म०। ३ क. ०व सुमनोहरा।
४ क. ०नोज्ञरूपं च त०।

वह्निरुवाच

भगवञ्छ्रूयतां वाक्यं कालेन यदुपस्थितम्। सीताहरणकालोऽयं तवैव समुपस्थितः ॥३०॥
दैवं च दुर्निवार्यं वै न च दैवात्परं बलम्। मत्प्रसूं मयि संन्यस्य च्छायां रक्षान्तिकेऽधुना ॥३१॥
दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षासमये पुनः। देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः ॥३२॥
रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम्। स्वच्छन्दं स्वीचकारासौ हृदयेन विदूयता ॥३३॥
वह्नियोगेन सीतावन्मायासीतां चकार ह। तत्तुल्यगुणरूपाङ्गीं[1] ददौ रामाय नारद ॥३४॥
सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषेध्य च। लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा ॥३५॥
एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कनकं मृगम्। सीता तं प्रेरयामास तदर्थे यत्नपूर्वकम् ॥३६॥
संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानकीरक्षणे वने। स्वयं जगाम हन्तुं तं विव्यधे सायकेन च ॥३७॥
लक्ष्मणेति च शब्दं वै कृत्वा मायामृगस्तदा। प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन् ॥३८॥
मृगरूपं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च। रत्ननिर्मितयानेन वैण्कुठं स जगाम ह ॥३९॥
वैकुण्ठस्य महाद्वारे किंकरो द्वारपालयोः। जयविजययोश्चैव बलवांश्च जयाभिधः ॥४०॥
शापेन सनकादीनां संप्राप्य राक्षसीं तनुम्। पुनर्जगाम तद्द्वारमादौ स द्वारपालयोः ॥४१॥
अथ शब्दं च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम्। सीता तं प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसंनिधौ ॥४२॥

अग्नि बोले—भगवन्! मेरी एक बात सुनने की कृपा करें। यह सीता के हरण का समय उपस्थित है, क्योंकि दैव (भाग्य) अत्यन्त दुर्निवार होता है। दैव से बढ़ कर कोई बलवान् नहीं है। अतः मेरी माता (सीता) को आप मुझे सौंप दीजिए और उसकी छाया को अपने पास रख लीजिए ॥३०-३१॥ पुनः परीक्षा के समय आपको सीता लौटा दूंगा। देवों ने इसी निमित्त मुझे भेजा है। मैं ब्राह्मण नहीं अग्नि हूँ ॥३२॥ यह सुन कर राम ने लक्ष्मण को बिना बताये ही हृदय से दुःखी होते हुए भी स्वतन्त्रता से इसकी स्वीकृति प्रदान की ॥३३॥ नारद! अग्नि ने तुरन्त सीता की भाँति एक माया सीता को उत्पन्न कर, जो गुण और रूप में सीता के ही समान थी, राम को सौंप दिया ॥२४॥ अनन्तर वह (ब्राह्मण) सीता को लेकर चला गया और इस गोप्य रहस्य को किसी से बताने के लिए निषेध भी कर गया। इसीलिए इस रहस्य को लक्ष्मण भी नहीं जान सके थे और अन्य की तो बात ही क्या ॥३५॥ इसी बीच राम को सुवर्ण का मृग (बना मारीच) दिखायी पड़ा, जिसको लाने के लिए सीता ने बड़े प्रयत्न से राम को भेजा ॥३६॥ भगवान् राम ने उस वन में जानकी की रक्षा के लिए लक्ष्मण को नियुक्त करके स्वयं उस मृग को मारने के लिए चले गए। उन्होंने बाण से उसे मार गिराया ॥३७॥ मरते समय उस मृग (मारीच) ने—'हे लक्ष्मण!' ऐसा कह कर अपने सामने स्थित राम को देखते तथा स्मरण करते हुए सहसा प्राणों को छोड़ दिया ॥३८॥ मृग का शरीर त्याग कर वह दिव्य देह से सम्पन्न हो गया और रत्न-निर्मित विमान पर सवार होकर वैकुण्ठ धाम को चला गया ॥३९॥ वैकुण्ठ के महाद्वार पर रहने वाले जय-विजय नामक दो द्वारपालों का वह जय नामक बलवान् सेवक था ॥४०॥ सनक, सनातन आदि कुमारों के शाप वश उसने राक्षसी शरीर प्राप्त किया था, किन्तु अब पुनः वह अपने उसी पद पर पहुँच गया ॥४१॥ अनन्तर सीता ने हे लक्ष्मण! इस कष्ट भरे शब्द को सुन कर लक्ष्मण को

---

१ ख. ०रूपां तां द०।

गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः। सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया ॥४३॥
विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम् । तूर्णं च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः ॥४४॥
मूर्छां संप्राप्य सुचिरं विललाप भृशं पुनः। पुनर्बभ्राम गहने तदन्वेषणपूर्वकम् ॥४५॥
काले संप्राप्य तद्वार्तां गृध्रद्वारा नदीतटे। सहायं वानरं कृत्वा बबन्धे सागरं हरिः ॥४६॥
लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च। सबान्धवं रावणं च सीतां संप्राप्य दुःखिताम् ॥४७॥
तां च वह्निपरीक्षां वै कारयामास सत्वरम्। हुताशनस्तत्र काले वास्तवीं जानकीं ददौ ॥४८॥
छाया चोवाच वह्निं च रामं च विनयान्विता। करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे ॥४९॥

वह्निरुवाच

त्वं गच्छ तपसे देवि पुष्करं च सुपुण्यदम्। कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यसि ॥५०॥
सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य[1] पुष्करे तपः। कृत्वा त्रिलक्षवर्षं च स्वर्गे लक्ष्मीर्बभूव ह ॥५१॥
सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा। कामिनी पाण्डवानां च द्रौपदी द्रुपदात्मजा ॥५२॥
कृतयुगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा। त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा ॥५३॥
तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा। त्रिहायणीति सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये ॥५४॥

राम के समीप भेज दिया ॥४२॥ लक्ष्मण के राम के पास चले जाने पर दुर्निवार रावण ने अपनी लीला से जानकी का अपहरण करके लंका की ओर चल दिया ॥४३॥ उधर लक्ष्मण को वन में देखकर राम विषाद में डूब गए तथा मूर्च्छित हो गए। फिर वे उसी क्षण अपने आश्रम पर गए और सीता को वहाँ न देख चिर काल तक विलाप करके सीता को खोजते हुए वे बार-बार वन में चक्कर लगाने लगे ॥४४-४५॥ कुछ समय बाद (उन्हें गोदावरी) नदी के तट पर गीध (जटायु) द्वारा जानकी का समाचार मिला। तब वानरों की सहायता से सागर में पुल बाँधकर वे लंका पहुँचे। रघुश्रेष्ठ राम ने वहाँ जाकर बाण से सपरिवार रावण का नाश किया और दुःखिनी सीता को प्राप्त किया ॥४६-४७॥ अनन्तर बहुत शीघ्र ही उन्होंने जानकी की अग्नि परीक्षा करायी। उस समय अग्नि ने प्रकट होकर उन्हें वास्तविक जानकी प्रदान की ॥४८॥ पश्चात् विनयावनत होकर उस छाया (सीता) ने अग्नि और राम से कहा—'अब मैं क्या करूँ, बताने की कृपा करें ॥'४९॥

अग्नि बोले—देवि ! तुम अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्कर क्षेत्र में जाकर तप करो। ऐसा करने से तुम स्वर्ग की लक्ष्मी हो जाओगी ॥५०॥ उसने उनकी बातें सुन कर पुष्कर में अत्यन्त तप किया और दिव्य तीन लाख वर्ष तक तप करने के उपरान्त स्वर्ग की लक्ष्मी हो गयी ॥५१॥ पुनः कुछ दिन के अनन्तर वह यज्ञ-कुण्ड से उत्पन्न होकर राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी हुई, जो पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनी ॥५२॥ इस प्रकार कृतयुग में वही कल्याणी वेदवती कुशध्वज की कन्या, त्रेता में जनक-पुत्री सीता बन कर राम की पत्नी और द्वापर में सीता की छाया रूप से द्रुपद-कुमारी द्रौपदी हुई। इस प्रकार तीनों युगों में वर्तमान रहने के कारण उसे 'त्रिहायणी' कहा जाता है ॥५३–५४॥

---

१ ख. प्रतेपे पुष्करे तपः। दिव्यं त्रि०।

नारद उवाच

प्रियाः पञ्च कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुंगव। इति मे चित्तसंदेहं दूरं कुरु महाप्रभो॥५५॥

श्रीनारायण उवाच

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद। रूपयौवनसंपन्ना छाया सा बहु विह्वला॥५६॥
रामाग्न्योराज्ञया तप्त्वा ययाचे शंकरं वरम्। कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनः पुनः॥५७॥
पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन। पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारं चकार सा॥५८॥
शिवस्तत्प्रार्थनां श्रुत्वा सस्मितो रसिकेश्वरः। प्रिये तव प्रियाः पञ्च भवन्त्विति वरं ददौ॥ ५९॥
तेनाऽऽसीत्पाण्डवानां च पञ्चानां कामिनी प्रिया। इत्येवं कथितं सर्वं प्रस्तुतं वस्तुतः शृणु॥६०॥
अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम्। विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः॥६१॥
एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यं च भारते। जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्धं वैकुण्ठमेव च॥६२॥
कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा। कथितं पुण्यमाख्यानं[1] पुण्यदं पापनाशनम्॥६३॥
सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च। सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता॥६४॥
कुशध्वजसुताख्यानमुक्तं संक्षेपतस्तव। धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते॥६५॥
इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्याने वेदवतीप्रस्तावो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

नारद बोले—मुनिश्रेष्ठ ! महाप्रभो ! द्रौपदी के पाँच पति कैसे हुए। मेरे मन का यह सन्देह दूर करने की कृपा करें॥५५॥

नारायण बोले—नारद ! लंका में भगवान् राम को वास्तविक जानकी मिल जाने पर वह रूप-यौवन-सम्पन्ना छाया बहुत व्याकुल हुई॥५६॥ पश्चात् राम और अग्नि की आज्ञा से तप करके उसने शंकर से वरदान माँगा। उसने कामातुर तथा पति के लिए व्यग्र होकर 'शंकर ! मुझे पति दीजिए' इस वाक्य का पाँच बार उच्चारण कर दिया॥५७-५८॥ तब रसिकेश्वर शंकर ने उसकी प्रार्थना सुन कर मुसकराते हुए कहा—'प्रिये ! तुम्हारे पाँच पति होंगे।'५९॥ इसीलिए वह पाँचों पाण्डवों की पत्नी हुई। यह सब (जो बीच की बातें थीं) बता चुका, अब प्रस्तुत को विषय वस्तुतः सुनो॥६०॥ इसके उपरान्त राम ने लंका में मनोहारिणी सीता को प्राप्त करके वहाँ का राज्य विभीषण को सौंपा और फिर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया॥६१॥ ग्यारह सहस्र वर्षों तक भारत में राज्यसुखानुभव करने के अनन्तर समस्त जनों के साथ वे वैकुण्ठ धाम को चले गए॥६२॥ और लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न हुई वेदवती लक्ष्मी में प्रविष्ट हो गयी। इस प्रकार यह पुण्यरूप, पुण्यप्रद और पापनाशक आख्यान तुम्हें बता दिया॥६३॥ उसकी जिह्वा के अग्रभाग पर निरन्तर चारों वेद मूर्तिमान् होकर विराजमान रहते थे, इसीलिए उसे वेदवती कहा गया है॥६४॥ इस भाँति कुशध्वज की सुता का आख्यान तुम्हें संक्षेप में सुना दिया है, अब धर्मध्वज की कन्या का आख्यान सुना रहा हूँ, सुनो ? ६५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसी के उपाख्यान-प्रसंग में वेदवती की प्रस्तावना नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त॥१४॥

---

१ क. ०ख्यानं श्रुतं शिक्षागमेषु च।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता। नृपेण सार्धं सा रागाद्रेमे वै गन्धमादने॥१॥
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनर्चचिता। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गी पुष्पचन्दनवायुना ॥२॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी रत्नभूषणभूषिता। कामुकी रसिकश्रेष्ठा रसिकेशेन संगता॥३॥
सुरताद्विरतिर्नाऽऽसीत्तयोः सुरतविज्ञयोः। गतं वर्षशतं दैवं न जानीतां दिवानिशम्॥४॥
ततो[1] राजा मतिं प्राप्य सुरताद्विरराम सः। कामुकी सुन्दरी किंचिन्न च तृप्तिं जगाम सा॥५॥
दधार गर्भं सा सद्यो देवाब्दशतकं सती। श्रीगर्भा श्रीयुता सा च संबभूव दिने दिने ॥६॥
शुभक्षणे शुभदिने शुभयोगेन संयुते। शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामिग्रहान्विते॥७॥
कार्तिकीपूर्णिमायां च सितवारे च पाद्मजे। सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं सुमनोहराम्॥८॥
पादपद्मयुगे[2] चैव पद्मरागविराजिताम्। राजराजेश्वरीं लक्ष्मीं सर्वावयवसुन्दरीम्॥९॥

अध्याय १५

तुलसी के प्रादुर्भाव का प्रसंग

नारायण बोले—राजा धर्मध्वज की पत्नी जो माधवी नाम से प्रख्यात थी, गन्धमादन पर्वत पर राजा के साथ अति अनुराग से विलास करती थी॥१॥ वहाँ रति के उपयुक्त शय्या बना कर स्वयं पुष्प-चन्दन से विभूषित, सम्पूर्ण अंगों में चन्दन से लिप्त, पुष्प और चन्दन के वायु से सेवित तथा रत्नों के आभूषणों से आभूषित वह परमरसिका रमणीरत्न कामुकी रसिकेश्वर पति के साथ रमण करने में जुटी रहती थी॥२-३॥ वे दोनों रतिक्रीड़ा विशेषज्ञ रति से विरत होने का नाम ही नहीं लेते थे। उन दोनों को रति करते हुए देव-वर्ष के हिसाब से सौ वर्ष बीत गए, किन्तु उन्हें इसका ज्ञान न रहा कि कब दिन बीते, कब रात॥४॥ तब राजा के हृदय में विवेक का प्रादुर्भाव हुआ और वे रति-क्रीड़ा से अलग हो गए, पर वह सुन्दरी कामुकी रानी अभी तृप्त नहीं हुई थी। फिर भी उस सती ने दिव्य सौ वर्षों का गर्भ धारण कर लिया। गर्भ में लक्ष्मी का अंश आने से दिनानुदिन उसकी शोभा बढ़ने लगी॥५-६॥ अनन्तर शुभ क्षण, शुभ दिन, शुभ योग, शुभ लग्न, शुभ अंश और शुभ गृहाधिप के योग में कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि तथा शुक्रवार के दिन उसने लक्ष्मी के अंश से प्रादुर्भूत, पद्मिनी और परम सुन्दरी कन्या को जन्म दिया। उसके दोनों चरण-कमलों में पद्मराग मणि के चिह्न थे (या पद्मरागमणि के समान उसके दोनों चरण-कमलों की कान्ति थी)। उसके समस्त अंग सुन्दर थे तथा वह राज-राजेश्वरी लक्ष्मी के समान थी॥७-९॥ वह राजलक्ष्मी के

---

१ क. ०तो रजस्वलां प्रा०। २ क. ०गे यस्याः पद्मराजी विराजते।

राजलक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां राजलक्ष्म्यधिदेवताम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् ॥१०॥
पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च पश्यन्तीं सस्मितां गृहम्। हस्तपादतलारक्तां निम्ननाभिं मनोरमाम् ॥११॥
तदधस्त्रिवलीयुक्तां वृत्तवल्गुनितम्बिनीम्। शीते सुखोष्णसर्वाङ्गीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम् ॥१२॥
श्यामां सुकेशीं रुचिरां न्यग्रोधपरिमण्डलाम्। श्वेतचम्पकवर्णाभां सुन्दरीष्वेकसुन्दरीम् ॥१३॥
नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमा। तेन नाम्ना च तुलसी तां वदन्ति पुराविदः ॥१४॥
सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्या स्त्री प्रकृतिर्यथा। सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम् ॥१५॥
तत्र दैवाब्दलक्षं च चकार परमं तपः। मम नारायणः स्वामी भवितेति विनिश्चिता ॥१६॥
ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयस्था सा च सुन्दरी। प्रकाशस्था वृष्टिधारां सहन्ती च दिवानिशम् ॥१७॥
विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा। त्रिंशद्वर्षसहस्राब्दं पत्राहारा तपस्विनी ॥१८॥
चत्वारिंशत्सहस्राब्दं वाय्वाहारा कृशोदरी। ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव सा ॥१९॥
निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः। समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम् ॥२०॥
चतुर्मुखं च सा दृष्ट्वा प्राणंसीद्धंसवाहनम्। तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामपि ॥२१॥

लक्षणों से अंकित तथा राजलक्ष्मी की अधिष्ठात्री देवता थी। उसका मुख शारदीय पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र के समान था। नेत्र शरद् ऋतु के कमल के समान थे और अधर पके हुए बिम्बाफल की समानता कर रहे थे। मुसकराती हुई वह महल (में चारों ओर) देख रही थी। उस मनोरम कन्या के हाथ-पैर के तलुवे लाल थे और नाभि गहरी थी ॥१०-११॥ उसके पेट पर पड़ने वाले तीन बल थे और गोल-गोल नितम्ब बहुत सुन्दर थे। शीतकाल में सुख देने के लिए उसके सम्पूर्ण अंग गरम रहते थे और उष्णकाल में वह शीतलांगी बनी रहती थी। वह सदा सोलह वर्ष की किशोरी जान पड़ती थी। उसके सुन्दर केश ऐसे थे मानो वटवृक्ष को घेरकर शोभा पाने वाले बरोह हों। उसकी कान्ति पीले चम्पे की तुलना कर रही थी। स्त्री और पुरुष उसे देखकर किसी के साथ तुलना करने में असमर्थ हो जाते थे; अतएव विद्वान् पुरुषों ने उसका नाम तुलसी रखा। भूमि पर पधारते ही वह ऐसी सुयोग्या बन गई, मानो साक्षात् प्रकृति देवी हो। सभी लोगों के निषेध (मना) करने पर भी वह तप करने के लिए बदरिकाश्रम चली गयी ॥१२-१५॥ 'मेरे स्वामी (पति) नारायण हों' ऐसा संकल्प कर उसने एक लाख दिव्य वर्षों तक वहाँ तप किया ॥१६॥ ग्रीष्म ऋतु में पँचाग्नि सेवन करके जाड़े के दिनों में जल में रह कर और वर्षा काल में खुले मैदान में आसन लगा कर दिन रात वृष्टि की धारा का वेग सहन करती हुई उस सुन्दरी ने तप किया ॥१७॥ बीस सहस्र वर्षों तक वह केवल फल और जल पर रही, फिर तीस सहस्र वर्षों तक पत्ते खाकर, चालीस सहस्र वर्षों तक वायु पीकर और दस सहस्र वर्षों तक उस पतली कमर वाली ने निराहार रह कर तप किया ॥१८-१९॥ निर्लक्ष्य होकर एक पैर पर खड़ी हो वह तपस्या करती रही। उसे देख कर ब्रह्मा बदरिकाश्रम में पधारे ॥२०॥ हँस पर बैठे हुए चतुर्मुख ब्रह्मा को देख कर उसने नमस्कार किया। अनन्तर जगत् के रचयिता ब्रह्मा ने उससे कहा ॥२१॥

१ख. ०शच्छतसहस्राब्दं प०।

ब्रह्मोवाच

वरं वृणुष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम् । हरिभक्तिं च मुक्तिं वाऽप्यजरामरतामपि ॥२२॥

तुलस्युवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम् । सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम सांप्रतम् ॥२३॥
अहं च तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा । कृष्णप्रियाकिंकरी च तदंशा तत्सखी प्रिया ॥२४॥
गोविन्देन सहाऽऽसक्तामतृप्तां मां च मूर्च्छिताम् । रासेश्वरी समागत्य चापश्यद्रासमण्डले ॥२५॥
गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रुषाऽन्विता । याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवं च पितामह ॥२६॥
मामुवाच स गोविन्दो मदंशं त्वं चतुर्भुजम् । लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात् ॥२७॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशोऽप्यन्तर्धानमवाप सः । देव्या भिया तनुं त्यक्त्वा लब्धं जन्म मया भुवि ॥२८॥
अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् । सांप्रतं लब्धुमिच्छामि वरमेवं च देहि मे ॥२९॥

ब्रह्मोवाच

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः । तदंशश्चातितेजस्वी चालभज्जन्म भारते ॥३०॥
साम्प्रतं राधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः । शङ्खचूड इति ख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्समः ॥३१॥

ब्रह्मा बोले—हे तुलसि ! तुम अपने मनोवांछित वरदान भगवान् की भक्ति, मुक्ति या अजर-अमर होना—जो कुछ चाहो, माँगो ॥२२॥

तुलसी बोली—हे तात ! मेरे मन का अभीष्ट जो है, तुम्हें बता रही हूँ, सुनो ! आप सर्वज्ञाता हैं। अतः आपके सामने मुझे लज्जा किस बात की हो सकती है ? ॥२३॥ मैं पहले गोलोक में तुलसी नाम की गोपी थी और भगवान् कृष्ण की प्रिया, सेविका, उनका अंश एवं उनकी प्रिय सखी थी ॥२४॥ एक बार रासमण्डल में भगवान् गोविन्द के साथ क्रीड़ा में अत्यन्त आसक्त होने के कारण मुझे तृप्ति होने से पहले ही मूर्च्छा आ गई। उसी बीच रासेश्वरी राधा ने वहाँ आकर देख लिया। जिससे रुष्ट होकर उन्होंने गोविन्द को फटकार बतायी और मुझे शाप दिया कि—'तुम मनुष्य के यहाँ उत्पन्न हो' ॥२५-२६॥ हे पितामह ! उस समय भगवान् गोविन्द ने मुझसे कहा, 'तुम भारत में तप कर के ब्रह्मा के वरदान द्वारा मेरे अंश चतुर्भुज विष्णु को पति के रूप में प्राप्त करोगी' ॥२७॥ इतना कहकर देवेश्वर भगवान् अन्तर्हित हो गए और राधिका देवी के भय से मैंने शरीर त्याग कर इस पृथ्वी पर जन्म ग्रहण कर लिया ॥२८॥ मैं इस समय नारायण भगवान् को, जो कान्त, शान्त तथा सुन्दर शरीर वाले हैं, चाहती हूँ। मुझे यही वरदान देने की कृपा करें ॥२९॥

ब्रह्मा बोले—भगवान् श्रीकृष्ण के अंग से उत्पन्न होने वाले सुदामा नामक गोप के अति तेजस्वी अंश ने भारत में जन्म ग्रहण किया है ॥३०॥ वह राधिका जी के शाप से इस समय दानववंश में शंखचूड़ नामक प्रख्यात दानव हुआ है जिसकी बराबरी तीनों लोक में कोई नहीं कर सकता ॥३१॥

गोलोके त्वां पुरा दृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः। विलम्बितुं मा शशाक राधिकायाः प्रभावतः॥३२॥
स च जातिस्मरस्तप्त्वा त्वां ललाभ वरेण च। जातिस्मरा तु त्वमपि सर्वं जानासि सुन्दरि॥३३॥
अधुना तस्य पत्नी च भव भाविनि शोभने। पश्चान्नारायणं कान्तं शान्तमेव लभिष्यसि॥३४॥
शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः। प्राप्नोषि वृक्षरूपं च त्वं पूता विश्वपावनी॥३५॥
प्रधाना सर्वपुष्पाणां विष्णुप्राणाधिका भवेः। त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत्॥३६॥
वृन्दावने वृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीति च। त्वत्पत्रैर्गोपिका गोपाः पूजयिष्यन्ति माधवम्॥३७॥
वृक्षाधिदेवरूपेण सार्धं कृष्णेन संततम्। विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छन्दं मद्वरेण च॥३८॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा। प्रणनाम च धातारं तं च किंचिदुवाच ह॥३९॥

तुलस्युवाच

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे। सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे॥४०॥
अतृप्ताऽहं च गोविन्दे दैवाच्छृङ्गारभङ्गता। गोविन्दस्यैव वचनात्प्रार्थयामि चतुर्भुजम्॥४१॥
त्वत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम्। ध्रुवमेवं लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय॥४२॥

वह गोलोक में तुम्हें देख कर अत्यन्त कामातुर हुआ था किन्तु राधिका के प्रभाववश नियम का उल्लंघन करने में असमर्थ रहा॥३२॥ हे सुन्दरि! उसे पूर्व जन्म का स्मरण है, इसलिए उसने तप कर के वरदान द्वारा तुम्हें प्राप्त कर लिया है और जातिस्मर होने के कारण तुम भी सब कुछ जानती ही हो॥३३॥ अतः हे शोभने, सुन्दरि! इस समय उसकी पत्नी होना स्वीकार करो और पश्चात् शान्त एवं कान्त नारायण भगवान् मिल ही जायँगे॥३४॥ दैवसंयोग से नारायण के ही शापवश तुम अपनी कला से वृक्ष बन कर भारत में रहोगी और तुमसे सारा विश्व पवित्र होगा॥३५॥ सम्पूर्ण पुष्पों में तुम प्रधान मानी जाओगी। भगवान् विष्णु तुम्हें प्राणों से अधिक प्रिय मानेंगे। तुम्हारे बिना सभी की पूजा निष्फल समझी जाएगी॥३६॥ वृन्दावन में वृक्ष होने पर तुम्हारा 'वृन्दावनी' नाम होगा और तुम्हारे ही पत्रों द्वारा गोप-गोपियाँ माधव कृष्ण की अर्चना करेंगी॥३७॥ तुम वृक्ष की अधीश्वरी रूप से भगवान् कृष्ण के साथ और मेरे वरदान से उस गोप के साथ स्वच्छन्द बिहार करोगी। ॥३८॥ ऐसी बात सुनकर मुसकराती हुई वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और अनन्तर ब्रह्मा को प्रणाम कर उसने उनसे कुछ निवेदन किया॥३९॥

तुलसी बोली--तात! मैं सत्य कह रही हूँ कि दो भुजाधारी श्यामसुन्दर कृष्ण में मेरी जैसी प्रीति है वैसी प्रीति चतुर्भुज विष्णु में नहीं है॥४०॥ दैवसंयोग से शृंगारभंग हो जाने के कारण मैं भगवान् कृष्ण से तृप्त न हो सकी किन्तु उन्हीं के कहने से चतुर्भुज विष्णु के लिये प्रार्थना कर रही हूँ॥४१॥ आपकी कृपा से मैं पुनः अत्यन्त दुर्लभ कृष्ण को निश्चित रूप से प्राप्त करूँगी। किन्तु मुझे राधा के भय से मुक्त कर दीजिए॥४२॥

ब्रह्मोवाच

गृहाण राधिकामन्त्रं ददे वै षोडशाक्षरम् । तस्याश्च प्राणतुल्या त्वं मद्वरेण भविष्यसि ॥४३॥
शृङ्गारं युवयोर्गोप्यमाज्ञास्यति च राधिका । राधासमा त्वं सुभगा गोविन्दस्य भविष्यसि ॥४४॥
इत्येवमुक्त्वा दत्त्वा च देव्यै तत्षोडशाक्षरम् । मन्त्रं तस्यै जगद्धाता स्तोत्रं च कवचं परम् ॥४५॥
सर्वं पूजाविधानं च पुरश्चर्याविधिक्रमम् । परं शुभाशिषं कृत्वा सोऽन्तर्धानमवाप ह ॥४६॥
सा च ब्रह्मोपदेशेन पुण्ये बदरिकाश्रमे । जजाप परमं मन्त्रं यदिष्टं पूर्वजन्मनः ॥४७॥
दिव्यं द्वादशवर्षं च पूजां चैव चकार सा । बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रत्यादेशमाप च ॥४८॥
सिद्धे तपसि मन्त्रे च वरं प्राप्य यथेप्सितम् । बुभुजे च [1]महाभागं यद्विश्वेषु सुदुर्लभम् ॥४९॥
प्रसन्नमानसा देवी तत्याज तपसः क्लमम् । सिद्धे फले नराणां च दुःखं तत् सुखमुत्तमम् ॥५०॥
भुक्त्वा पीत्वा च संतुष्टा शयनं च चकार सा । तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते ॥५१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्याने तुलसीवरप्रदानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

ब्रह्मा बोले—मैं राधा का सोलह अक्षर वाला मन्त्र तुम्हें बता रहा हूँ, उसे ग्रहण करो। उसके प्रभाव से तुम मेरे वरदान द्वारा उनके प्राणों के समान प्रिय हो जाओगी ॥४३॥ राधिका स्वयं तुम दोनों को एकान्त में शृंगार करने की आज्ञा प्रदान कर देंगी तथा राधा के समान ही तुम गोविन्द की सौभाग्यवती प्रिया बन जाओगी ॥४४॥ इतना कह कर जगत् के रचयिता ब्रह्मा ने उसे राधा का षोडशाक्षर मन्त्र, स्तोत्र और श्रेष्ठ कवच प्रदान किया ॥४५॥ फिर सम्पूर्ण पूजाविधान, पुरश्चरण की विधि का क्रम और शुभाशीर्वाद देकर ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये ॥४६॥ पश्चात् तुलसी ने भी ब्रह्मा के उपदेश से पुण्य बदरिकाश्रम में जाकर अपने पूर्वजन्म के उस अभीष्ट मन्त्र का जप किया ॥४७॥ और दिव्य बारह वर्षों तक पूजा करने के अनन्तर वह देवी सिद्ध हो गयी और उसे देवादेश प्राप्त हुआ ॥४८॥ तप और मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर उसने अभीष्ट वर प्राप्त किया, जिससे विश्व-दुर्लभ महान् पुण्य-सुख उसे प्राप्त हुआ ॥४९॥ तपस्या सम्बन्धी जो भी क्लेश थे, वे मन में प्रसन्नता उत्पन्न होने के कारण दूर हो गए; क्योंकि फल सिद्ध हो जाने पर मनुष्य का दुःख ही उत्तम सुख के रूप में परिणत हो जाता है ॥५०॥ इस प्रकार उसने भी भोजन-पान से सन्तुष्ट होकर पुष्प-चन्दन-चर्चित एवं मनोहर शय्या पर शयन किया ॥५१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृति-खण्ड में तुलसी-वर-प्रदान नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

१क. ०हादेवं य०।

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

तुलसी परितुष्टा सा चास्वाप्सीद्धृष्टमानसा। नवयौवनसंपन्ना[1] प्रशंसन्ती वराङ्गना ॥१॥
चिक्षेप पञ्चबाणश्च पञ्च बाणांश्च तां प्रति। पुष्पायुधेन सा विद्धा पुष्पचन्दनचर्चिता ॥२॥
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी कम्पिता रक्तलोचना। क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छामवाप ह ॥३॥
क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तन्द्रां सुखावहाम्। क्षणं सा दहनं प्राप क्षणं प्राप प्रमत्तताम् ॥४॥
क्षणं सा चेतनां प्राप क्षणं प्राप विषण्णताम्। उत्तिष्ठन्ती क्षणं तल्पाद्गच्छन्ती निकटं क्षणम् ॥५॥
भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगाद्विवसन्ती क्षणं पुनः। क्षणमेव समुद्वेगादस्वाप्सीत्पुनरेव सा ॥६॥
पुष्पचन्दनतल्पं च तद्बभूवातिकण्टकम्। विषमाहारकं स्वादु दिव्यरूपं फलं जलम् ॥७॥
निलयश्च[2] निराकारः सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः। सिन्दूरपत्रकं चैव व्रणतुल्यं च दुःखदम् ॥८॥
क्षणं ददर्श तन्द्रायां सुवेषं पुरुषं सती। सुन्दरं च युवानं च सस्मितं रसिकेश्वरम् ॥९॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्। आगच्छन्तं माल्यवन्तं पश्यन्तं तन्मुखाम्बुजम् ॥१०॥

अध्याय १६

तुलसी के साथ शंखचूड का विवाह

नारायण बोले—जिस समय नवयौवन से सम्पन्न सुन्दरी तुलसी भलीभाँति सन्तुष्ट और प्रसन्नचित्त होकर शयन कर रही थी ॥१॥ उसी समय कामदेव ने उस पर अपने पाँचों बाणों को चला दिया, जिससे वह पुष्पों और चन्दनों से चर्चित होने पर भी उस कामबाण से जलने लगी ॥२॥ उसके सर्वांग में रोमाञ्च हो गया। वह काँपने लगी और उसके नेत्र रक्तवर्ण हो गये। क्षण में शुष्कता, क्षण में मूर्च्छा, क्षण में उद्विग्नता, क्षण में आलस्य क्षण में सुख, क्षण में जलन, क्षण में प्रमत्तता, क्षण में चेतना और क्षण में विषाद उस पर दौड़ने लगे। क्षण में वह शय्या से उठकर इधर-उधर घूमने लगती और क्षण में पुनः वहीं आ जाती ॥३-५॥ क्षण में ऊबकर भ्रमण करती, क्षण में विवस्त्र हो जाती और क्षण में पुनः आकर शय्या पर लेट जाती ॥६॥ पुष्प-चन्दन की शय्या उसे काँटे की भाँति अत्यन्त चुभने लगी; दिव्य स्वाद से भरा हुआ जल और फल भी उसे विषम आहार लगने लगा ॥७॥ घर शून्य दिखाई देता था। सूक्ष्म वस्त्र अग्नि की भाँति मालूम होता था। सिन्दूरपत्र व्रण के समान दुःखदायक हो रहा था ॥८॥ क्षणभर की तन्द्रावस्था में उस सती ने एक सुन्दर वेष वाले पुरुष को देखा। वह परम सुन्दर युवक था। उसके मुख पर मुसकान छायी थी। उसके सम्पूर्ण अंगों में चन्दन का अनुलेप था। रत्नों के बने आभूषण उसे सुशोभित कर रहे थे। उसके गले में सुन्दर माला थी। उसके नेत्र तुलसी के मुखकमल को देख रहे थे ॥९-१०॥

१क. ०न्ना वृषस्यन्ती ब०। २क. ०श्च बिलाका०।

कथयन्तं रतिकथां चुम्बन्तमधरं मुहुः। शयानं पुष्पतल्पे च समाश्लिष्यन्तमङ्गकम्॥११॥
पुनरेव तु गच्छन्तमागच्छन्तं वसन्तकम्। कान्त क्व यासि प्राणेश तिष्ठेत्येवमुवाच सा॥१२॥
पुनः स्वचेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः। एवं तपोवने सा च तस्थौ तत्रैव नारद॥१३॥
शङ्खचूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोरमम्। कृष्णस्य मन्त्रं संप्राप्य प्राप्य सिद्धिं तु पुष्करे॥१४॥
पठन्सदा तु कवचं सर्वमङ्गलमङ्गलम्। ब्रह्मेशाच्च वरं प्राप्य यत्तन्मनसि वाञ्छितम्॥१५॥
आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीं वै समाययौ। आगच्छन्तं शङ्खचूडमपश्यत्तुलसी मुने॥१६॥
नवयौवनसंपन्नं कामदेवसमप्रभम्। श्वेतचम्पकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम्॥१७॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम्। महारत्नगणाक्लृप्तविमानस्थं मनोहरम्॥१८॥
रत्नकुण्डलयुग्माढ्यगण्डस्थलविराजितम्। पारिजातप्रसूनाढ्यमाल्यवन्तं च सुस्मितम्[1]॥१९॥
कस्तूरीकुङ्कुमयुतं [2]सुगन्धितिलकोज्ज्वलम्। सा दृष्ट्वा संनिधाने तं मुखमाच्छाद्य वाससा॥२०॥
सस्मिता तं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुनः पुनः। बभूव सा नम्रमुखी नवसंगमलज्जिता॥२१॥

वह पुष्प-शय्या पर लेटकर रतिवर्धक कथाओं को कहते हुए बार-बार तुलसी का अधर चुम्बन तथा उसके अंगों का आलिंगन कर रहा था। ॥११॥ तुलसी ने पुनः देखा कि वह चला गया तथा वसन्त आ गया है। इतने में वह यह कह कर कि—हे प्राणनाथ, हे कान्त, कहाँ जा रहे हो, थोडी देर रुक जाओ, उठ बैठी॥१२॥ नारद! पुनः चेतना प्राप्त होने पर (अर्थात् तन्द्रा भंग होने पर) वह बार-बार विलाप करने लगी। इस प्रकार वह देवी तपोवन में रहकर समय व्यतीत कर रही थी॥१३॥

उसी समय महायोगी शंखचूड ने जैगीषव्य ऋषि से श्रीकृष्ण का मनोरम मंत्र प्राप्त करके पुष्कर क्षेत्र में उसको सिद्ध किया॥१४॥ उसने समस्त मंगलों का मंगल रूप श्रीकृष्णकवच का सदा पाठ करके ब्रह्मा के प्रभु से मनोनीत वरदान भी प्राप्त कर लिया था॥१५॥ मुने! ब्रह्मा की आज्ञा से वह भी वदरिकाश्रम में गया और तुलसी ने आते हुए उसे देखा। वह नवीन यौवन से सम्पन्न और कामदेव के समान सुन्दर था। उसकी कान्ति श्वेतचम्पा के समान थी। रत्नमय अलंकारों से वह अलंकृत था। उसके मुख की शोभा शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की समता कर रही थी। उसके नेत्र शरत्कालीन कमल के समान थे। श्रेष्ठ रत्नों की राशि से बने हुए विमान पर वह सुन्दर युवक विराजमान था। दो रत्नमय कुण्डल उसके गंडस्थल की छवि बढ़ा रहे थे। पारिजात के पुष्पों की माला उसने पहन रखी थी। उसका मुख मुसकान से भरा था। कस्तूरी और कुंकुम से युक्त सुगंधपूर्ण चन्दन द्वारा उसके अंग अनुलिप्त थे॥१६-२०॥ ऐसे युवक को अपने समीप देखकर उसने वस्त्र से अपने मुख को (थोड़ा-सा) ढक लिया। फिर मुसकराती तथा बार-बार उसे कटाक्ष के साथ देखती हुई उसने नवीन समागम के कारण लज्जा से अपना मुख नीचे की ओर कर लिया॥२१॥ किन्तु काम-बाण से पीड़ित होने के कारण उस कामुकी के

१क. सुप्रियम्। २क. ०न्धिचन्दनान्वितम्।

कामुकी कामबाणेन पीडिता पुलकान्विता। पिबन्ती तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यां च संततम् ॥२२॥
ददर्श शङ्खचूडश्च कन्यामेकां तपोवने। पुष्पचन्दनतल्पस्थां वसन्तीं वाससाऽऽवृताम् ॥२३॥
पश्यन्तीं तन्मुखं शश्वत्सस्मितां सुमनोहराम्। सुपीनकठिनश्रोणीं पीनोन्नतपयोधराम् ॥२४॥
मुक्तापङ्क्तिप्रभाजुष्टदन्तपङ्क्तिं सुबिभ्रतीम्। पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च सुनासां सुन्दरीं वराम् ॥२५॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां शरच्चन्द्रसमप्रभाम्। स्वतेजसा परिवृतां सुखदृश्यां मनोरमाम् ॥२६॥
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना। सिन्दूरबिन्दुना शश्वत्सीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम् ॥२७॥
निम्ननाभिगभीरां च तदधस्त्रिवलीयुताम्। करपद्मतलारक्तां नखचन्द्रैर्विभूषिताम् ॥२८॥
स्थलपद्मप्रभाजुष्टं पादपद्मं च बिभ्रतीम्। आरक्तवर्णं ललितमलक्तकसमप्रभम् ॥२९॥
[1]स्थलपद्मैश्च जलजैः पद्मरागविराजिताम्। शरदिन्दुविनिन्द्यैकनखेन्द्वोघविराजिताम् ॥३०॥
[2]अमूल्यरत्नसंमिश्रयावकेन स्वलंकृताम्। मणीन्द्रमुख्यखचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥३१॥
दधतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्। अमूल्यरत्नसंक्लृप्तमकराकृतिरूपिणा ॥३२॥
[3]चित्रकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम्। रत्नेन्द्रमुक्ताहारश्रीस्तनमध्यस्थलोज्ज्वलाम् ॥३३॥
रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषिताम्। रत्नाङ्गुलीयकैर्दिव्यैरङ्गुल्यावलिभिर्युताम् ॥३४॥

शरीर में रोमांच हो आया। तब वह निरन्तर अपने दोनों नेत्रों से शंखचूड के मुखकमल का पान करने लगी ॥२२॥ उधर शंखचूड ने भी तपोवन में अकेली उस कन्या को देखा। वह वस्त्रावृत होकर पुष्पचन्दन की शय्या पर विराजमान थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी और निरन्तर शंखचूड के मुख को देखती हुई मुसकरा रही थी ॥२३-२४॥ उसका श्रोणी भाग स्थूल और कठोर था। स्तन स्थूल एवं उन्नत थे। दाँतों की पंक्तियाँ मोतियों की पंक्ति की भाँति चमक रही थीं। अधरोष्ठ पके बिम्बाफल के समान थे। उस सुन्दरी की नासिका बड़ी अच्छी थी। वर्ण तपाये हुए सुवर्ण के सदृश था। कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमा की तरह थी। वह अपने तेज से घिरी हुई थी। उसका दर्शन सौम्य था। वह मनोरम थी। उसके शरीर पर कस्तूरी-बिन्दुओं के साथ चन्दन-बिन्दु तथा सिन्दूरबिन्दु शोभायमान हो रहे थे। सीमन्त (माँग) का निचला भाग उज्ज्वल था। उसकी नाभि गंभीर थी। वह त्रिवली (तीन बलों) से युक्त थी। उसके करकमल का तल भाग (हथेली) लाल था। नख चन्द्राकार थे। चरणारविन्द स्थलकमल की-सी कान्ति से युक्त थे। वे (दोनों चरण) लाल, ललित तथा महावर के समान प्रभापूर्ण थे। वह स्थकमल और रक्तकमल समेत पद्मराग मणि से विभूषित थी ॥२५-३०॥ शारदीय चन्द्रमा को तिरस्कृत करने वाले नखचन्द्रों से वह सुशोभित थी। अमूल्य रत्नों से मिश्रित महावर से वह अलंकृत थी। सर्वोत्तम मणियों के बने शब्दायमान नूपुर उसके पैरों की शोभा बढ़ा रहे थे। मालती के पुष्पों की माला से सम्पन्न केशकलाप उसके मस्तक पर शोभा पा रहे थे। उसके कानों में अमूल्य रत्नों के बने हुए मकराकृत कुंडल थे। सर्वोत्तम रत्नों से निर्मित हार उसके वक्षःस्थल को समुज्वल बना रहा था। रत्नमय कंकण, केयूर, शंख और अंगूठियाँ उस देवी की शोभा बढ़ा रही थीं॥ ३१-३४॥

१क. ऊर्ध्वपद्मस्थलपद्मबीजराजिवि०। २क. ०स्त्रनिर्माणपाशकावलिसंयुताम्। ३क. ०युग्मे श्रीसुषमापरिशोभिताम्।

दृष्ट्वा तां ललितां कन्यां सुशीलां सुदतीं सतीम्। उवास तत्समीपे च मधुरं तामुवाच सः ॥३५॥

शङ्खचूड उवाच

कात्वं कस्य च कन्याऽसि धन्ये मान्ये सुयोषिताम्। का त्वं[1] कामिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि ॥३६॥
स्वर्गभोगादिसारेऽतिविहारे हाररूपिणि। संसारदारसारे च मायाधारे मनोहरे ॥३७॥
जगद्विलक्षणे क्षामे मुनीनां मोहकारिणि। मौनं त्यक्त्वा किंकरं मां संभाषां कुरु सुन्दरि ॥३८॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना। सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा ॥३९॥

तुलस्युवाच

धर्मध्वजसुताऽहं च तपस्यायां तपोवने। तपस्विनीह तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम् ॥४०॥
कामिनीं कुलजातां च रहस्येकाकिनीं सतीम्। न पृच्छति कुले जात एवमेव श्रुतौ श्रुतम् ॥४१॥
लम्पटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः। येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः स कामीच्छति कामिनीम् ॥४२॥
आपातमधुरामन्ते चान्तकां पुरुषस्य ताम्। विषकुम्भाकाररूपाममृतास्यां च संततम् ॥४३॥

इस प्रकार की सुन्दरी सुशील, आकर्षक दाँतों वाली एवं साध्वी उस कन्या को देखकर शंखचूड उसके पास बैठ गया और मीठे शब्दों में बोला ॥३५॥

शंखचूड बोले—सुन्दरी ललनाओं में तुम धन्या और मान्या हो, अतः तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? हे कामिनि! हे कल्याणि! तुम समस्त कल्याण प्रदान करने वाली हो, इसलिए कहो तुम कौन हो? ॥३६॥ तुम स्वर्ग-भोग आदि का सार हो। अत्यन्त विहार करने वाली हो। हार-रूपिणी हो। संसार का सार हो। माया का आधार हो। मनोरमा हो। संसार में विलक्षण हो। छरहरे शरीर वाली हो। मुनिजनों को मोहित करने वाली हो अतः मौनभाव त्यागकर इस सेवक से कुछ बोलने की कृपा करो ॥३७-३८॥ इस प्रकार की बातें सुनकर उस वाम-लोचना ने कामवासना से मुसकराते हुए मुख नीचे की ओर झुका कर उस कामुक युवक से कहना आरम्भ किया ॥३९॥

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वज की कन्या हूँ। इस तपोवन में तपस्या करने के लिए आई हूँ और यहाँ तपस्विनी होकर रह रही हूँ। तुम कौन हो? यहाँ से सुखपूर्वक चले जाओ ॥४०॥ श्रुतियों में यह बात सुनी गई है कि किसी कुलीन एवं सती कन्या से एकान्त में कोई भी कुलीन पुरुष बात नहीं करता है। जो लम्पट, अकुलीन तथा धर्मशास्त्र के अर्थज्ञान से शून्य एवं वेदों के अर्थों के श्रवण से रहित है, वही कामी पुरुष कामिनी को चाहता है। कामिनी तत्काल रमणीय प्रतीत होती है, किन्तु अन्त में पुरुष के लिए घातक हो जाती है। क्योंकि स्त्रियाँ विष से भरे हुए घड़े के समान है, परन्तु उसका मुख ऐसा जान पड़ता है मानो सदा अमृत से भरा हो ॥४१-४३॥

१क. त्वं मानिनि।

हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम् । स्वकार्यपरिनिष्पत्तितत्परां सततं च ताम् ॥४४॥
कार्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा । स्वान्तर्मलिनरूपां च प्रसन्नवदनेक्षणाम् ॥४५॥
श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमनिरूपितम् । तासु को विश्वसेत्प्राज्ञो ह्यप्राज्ञ इव सर्वदा ॥४६॥
तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयन्तीं नवं नवम् । दृष्ट्वा सुवेशं पुरुषमिच्छन्तीं हृदये सदा ॥४७॥
बाह्ये स्वात्मसतीत्वं च ज्ञापयन्तीं प्रयत्नतः । शश्वत्कामां च रामां च कामाधारां मनोहराम् ॥४८॥
बाह्ये छलाच्छादयन्तीं स्वान्तर्मैथुनलालसाम्[1] । कान्तं ग्रसन्तीं रहसि बाह्येऽतीव सुलज्जिताम् ॥४९॥
मानिनीं मैथुनाभावे कोपिनीं कलहाङ्कुराम् । [2]सुप्रीतां भूरिसंभोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिताम् ॥५०॥
सुमिष्टान्नं शीततोयमाकाङ्क्षन्तीं च मानसे । सुन्दरं रसिकं कान्तं युवानं गुणिनं सदा ॥५१॥
सुतात्परमतिस्नेहं कुर्वतीं रतिकर्तरि । प्राणाधिकं प्रियतमं संभोगकुशलं प्रियम् ॥५२॥
पश्यन्तीं रिपुतुल्यं च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम् । कलहं कुर्वतीं शश्वत्तेन सार्धं सुकोपनाम् ॥५३॥
चर्चया भक्षयन्ती तं कीनाश इव गोरजः । दुःसाहसस्वरूपां च सर्वदोषाश्रयां सदा ॥५४॥

कामिनी का हृदय निरन्तर क्षुर (स्तुरे) की धार के समान होता है, पर वह निरन्तर मधुरवाणी बोलती रहती है। वह अपने कार्य सिद्ध करने में सदा तत्पर रहती है॥४४॥ अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही वह स्वामी (पति) के वश में रहती है अन्यथा वह सदा अवश (किसी के अधीन न रहने वाली) है। उसका हृदय अत्यन्त मलिन होता है, किन्तु वह ताकती है प्रसन्न मुखमुद्रा से॥४५॥ वेदों और पुराणों में जिसका चरित्र न कहने योग्य बताया गया है उसके प्रति कौन बुद्धिमान् मनुष्य मूर्ख की भाँति सदा विश्वास करेगा॥४६॥ स्त्रियों के शत्रु और मित्र नहीं होते हैं। वे नित्य नवसमागम चाहती हैं। सुन्दर वेश वाले पुरुष की कामना सदा हृदय में किया करती हैं॥४७॥ किन्तु बाहर (ऊपर) से अपने सतीत्व को प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। स्त्रियाँ सदा कामयुक्त, रमणीय, कामाधार तथा मनोहर होती हैं और अपने भीतर मैथुन की लालसा रखकर ऊपर से उसे छिपाये रहती हैं। इसी तरह वे ऊपर से बड़ी लज्जाशील बनी रहती हैं, पर एकान्त में कान्त को ग्रस लेती हैं॥४८-४९॥ इस भाँति वे अत्यन्त मानिनी स्त्रियाँ मैथुन (रति) क्रिया में कमी होने पर कोप की मूर्ति बन जाती हैं। इससे उनमें कलह का अंकुर निकल आता है। अत्यन्त सम्भोग करने से वे प्रसन्न रहती हैं और स्वल्प मैथुन करने से दुःखी हो जाती हैं। ॥५०॥ वे मन में सदैव उत्तम भोजन और शीतल जल तथा सुन्दर, रसिक, युवा और गुणी पति की अभिलाषा रखती हैं॥५१॥ रति करनेवाले पुरुष से वह पुत्र से भी अधिक स्नेह करती हैं। रति-दक्ष पुरुष उन्हें प्राणों से अधिक प्रिय होता है॥५२॥ मैथुन करने में असमर्थ या वृद्ध पुरुष को वे शत्रु समझती हैं। इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके साथ वे निरन्तर कलह करती रहती हैं॥५३॥ झगड़ा करने पर उसे यमराज की भाँति खा लेने के लिए तैयार हो जाती हैं। इस प्रकार दुःसाहस की मूर्ति बनकर सदा समस्त दोषों को अपनाये रहती हैं॥५४॥ निरन्तर कपट का

१क. ०नदुःखिताम्। २ख. सुमीतां। ३ख. सर्वदोषाश्रयां सदा।

शश्वत्कपटरूपां च [1]दुःसाध्यामप्रतिक्रियाम् । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुस्त्याज्यां मोहरूपिणीम् ॥५५॥
तपोमार्गार्गलां शश्वन्मुक्तिद्वारकपाटिकाम् ॥५६॥
हरेर्भक्तिव्यवहितां सर्वमायाकरण्डिकाम् । संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणीम् ॥५७॥
इन्द्रजालस्वरूपां च मिथ्यावादिस्वरूपिणीम् । बिभ्रतीं बाह्यसौन्दर्यमध्याङ्गमतिकुत्सितम् ॥५८॥
नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम् । दुर्गन्धिदोषसंयुक्तं रक्ताक्तं चाप्यसंस्कृतम् ॥५९॥
मायारूपं मायिनां च विधिना निर्मितं पुरा । विषरूपां मुमुक्षूणामदृश्यां चैव सर्वदा ॥६०॥
इत्युक्त्वा तुलसी तं च विरराम च नारद । सस्मितः शङ्खचूडश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६१॥

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम् । किंचित्सत्यमलीकं च किंचिन्मत्तो निशामय ॥६२॥
[1]निर्मितं विविधं धात्रा स्त्रीरूपं सर्वमोहनम् । कृत्यारूपं वास्तवं च प्रशस्यं चाप्रशंसितम् ॥६३॥
[2]लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकादिकम् । सृष्टिसूत्रस्वरूपं चाप्याद्यं स्रष्ट्रा तु निर्मितम् ॥६४॥
एतासामंशरूपं यत्स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम् । तत्प्रशस्यं यशोरूपं सर्वमङ्गलकारणम् ॥६५॥

रूप धारण करने वाली स्त्रियाँ दुःसाध्य तथा अप्रतीकार्य होती हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि के लिए भी दुस्त्यज बतायी गयी हैं। वे मोहरूपा हैं। तपस्या के मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए अर्गलास्वरूप हैं और मुक्ति-द्वार को बंद करने के लिए कपाटरूपा हैं। वे विष्णु की भक्ति में बाधक, सम्पूर्ण माया की करण्डिका (सन्दूक) और संसार रूपी कारागार में (डाले रहने के लिए) सदा बेड़ी के समान हैं॥५५-५७॥ अतएव स्त्री इन्द्रजाल के समान होती है और मिथ्यावादी का तो उसे स्वरूप ही कहना चाहिए। बाहर से तो वह अत्यन्त सुन्दरता धारण करती है, परन्तु उसके भीतर के अंग कुत्सित भावों से भरे रहते हैं। उसका शरीर विष्ठा, मूत्र, पीब और मल आदि नाना प्रकार की दुर्गंधपूर्ण वस्तुओं का आधार है। रक्तरंजित तथा दोषयुक्त यह शरीर कभी पवित्र नहीं रहता। सृष्टि की रचना के समय ब्रह्मा ने मायावी व्यक्तियों के लिए इस मायास्वरूपिणी स्त्री का सर्जन किया है। मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुषों के लिए यह विष का काम करती है। अतः मोक्षाभिलाषी व्यक्ति उसे देखना भी नहीं चाहते। नारद! शंखचूड से इस प्रकार कहकर तुलसी चुप हो गई। तब शंखचूड हँसकर कहने लगा॥५८-६१॥

शंखचूड बोले—हे देवि! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब मिथ्या नहीं है। कुछ सत्य भी है और कुछ असत्य भी। अब मैं भी कुछ कह रहा हूँ, सुनो! ब्रह्मा ने सर्वमोहक स्त्रीरूप के दो भेद किये। एक है वास्तवस्वरूप और दूसरा है कृत्यास्वरूप। पहला प्रशस्त है और दूसरा अप्रशस्त। स्रष्टा ने आदिकाल में सबसे पहले लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री और राधिका आदि देवियों का निर्माण किया, जो सृष्टि का सूत्रस्वरूप हैं (अर्थात् जिनसे सृष्टि आरम्भ हुई हैं) ॥६१-६४॥ इन देवियों के अंश से जो अन्य स्त्रीरूप बना है, वह वास्तव में प्रशंसनीय, यशःरूप और समस्त मंगलों का कारण है॥६५॥ जैसे

१ख. ०तं द्विवि०। २क. ०तीगङ्गासा।

शतरूपा देवहूतिः स्वधा स्वाहा च दक्षिणा। छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा ॥६६॥
कुबेरवायुपत्नी साऽप्यदितिश्च दितिस्तथा। लोपामुद्राऽनसूया च कैटभी तुलसी तथा ॥६७॥
अहल्याऽरुन्धती मैना तारा मन्दोदरी परा। दमयन्ती वेदवती गङ्गा च यमुना तथा ॥६८॥
पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च वसुंधरा। षष्ठी मङ्गलचण्डी च मूर्तिर्वै धर्मकामिनी ॥६९॥
स्वस्तिः श्रद्धा च कान्तिश्च तुष्टिः[1] शान्तिस्तथापरा। निद्रा तन्द्रा क्षुत्पिपासा संध्या रात्रिर्दिनानि च ॥७०॥
[2]संपत्तिवृत्तिकीर्त्यश्च क्रिया शोभा प्रमांशकम्। यत्स्त्रीरूपं च संभूतमुत्तमं तद्युगे युगे ॥७१॥
कृत्यास्वरूपं तद्यत्तु स्वर्वेश्यादिकमेव च। तदप्रशस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च ॥७२॥
सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तच्च शुद्धं स्वभावतः। तदुत्तमं च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम् ॥७३॥
तद्वास्तवं च विज्ञेयं प्रवदन्ति मनीषिणः। रजोरूपं तमोरूपं कृत्यासु द्विविधं स्मृतम् ॥७४॥
स्थानाभावात्क्षणाभावान्मध्यवृत्तेरभावतः। देहक्लेशेन रोगेण[3] सत्संसर्गेण सुन्दरी ॥७५॥
बहुगोष्ठावृतेनैव रिपुराजभयेन च। रजोरूपस्य साध्वीत्वमेतेनैवोपजायते ॥७६॥
इदं मध्यमरूपं च प्रवदन्ति मनीषिणः। तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद्विदुर्बुधाः ॥७७॥
न पृच्छति कुले जातः पण्डितश्च परस्त्रियम्। निर्जने दुर्जने वाऽपि रहस्ये वचसा स्त्रियम् ॥७८॥
आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना। गान्धर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने ॥७९॥

शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, इन्द्राणी, कुबेर की पत्नी, वायु की स्त्री, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कैटभी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, यमुना, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, मंगलचण्डी, षष्ठी, धर्म की पत्नी मूर्ति, स्वस्ति, श्रद्धा, कान्ति, तुष्टि, शान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, सन्ध्या, रात्रि, दिन, सम्पत्ति, वृत्ति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा, आदि जितने उत्तम स्त्रीरूप उत्पन्न हुए हैं वे प्रत्येक युगों में सुखप्रद हैं॥६६-७१॥ उसी भाँति स्त्री का जो दूसरा रूप है, वह कृत्या (तमः प्रधान पिशाचिनी आदि) का है। स्वर्ग की अप्सरायें भी कृत्यास्वरूपा हैं। समस्त विश्व में वे प्रशंसाहीन (निन्दित) और पुंश्चली (व्यभिचारिणी) रूप से विख्यात हैं॥७२॥ सत्त्वगुणप्रधान जो देवियाँ हैं वे स्वभावतः अत्यन्त शुद्ध हैं। समस्त विश्व में वे सर्वोत्तम और साध्वीरूप होने से प्रशंसित हैं। इसीलिए विद्वद्वृन्द उसे 'वास्तवरूपा' कहते हैं। इस प्रकार कृत्या के भी रजोरूप एवं तमोरूप के कारण दो भेद बताये गये हैं॥७३-७४॥ सुन्दरि! स्थानाभाव, समयाभाव, मध्यवर्ती दूत या दूती का न होना, शारीरिक पीड़ा, रोग, सत्संग, बहुगोष्ठी (बहुत से जनसमुदाय द्वारा घिरी रहना) शत्रु अथवा राजा से भय का प्राप्त होना—इन्हीं कारणों से रजोगुण प्रधान स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षा कर पाती हैं। इन्हीं स्त्रियों को मनीषी लोग 'मध्यमा' कहते हैं। और तमोगुण प्रधान स्त्रियाँ दुर्निवार्य होती हैं। विद्वद्वृन्द इसे ही 'अधमा' कहते हैं॥७५-७७॥ यद्यपि कुलीन एवं पण्डित पुरुष निर्जन या दुर्जन स्थान में कहीं परस्त्री से कोई बात-चीत नहीं करते हैं तथापि मैं सम्प्रति ब्रह्मा ही की आज्ञा

---

१ क ०ष्टिर्लज्जा त०। २ क. ० त्तिधृतिकी०। ३ क. ०ण तदसङ्गेन सु०।

अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः। दनुवंशोद्भवो विश्वे सुदामाऽहं हरेः पुरे॥८०॥
अहमष्टसु गोपेषु [1]गोगोपीपार्षदेषु च। अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः॥८१॥
जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः। जातिस्मरा त्वं तुलसी संसक्ता[2] हरिणा पुरा॥८२॥
त्वमेव राधिकाकोपाज्जाताऽसि भारते भुवि। त्वां संभोक्तुमिच्छुकोऽहं नालं राधाभयात्तदा॥८३॥
इत्येवमुक्त्वा स पुमान्विरराम महामुने। सस्मिता तुलसी हृष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे॥८४॥

तुलस्युवाच

एवंविधो बुधो विश्वे बुधेषु च प्रशंसितः। कान्तमेवंविधं कान्ता शश्वदिच्छति कामतः॥८५॥
त्वयाऽहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता। सनिन्दितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः॥८६॥
निन्दन्ति पितरो देवा बान्धवाः स्त्रीजितं जनम्। स्त्रीजितं मनसा वाचा पिता भ्राता[3] च निन्दति॥८७॥
शुध्येद्विप्रो दशाहेन जातके मृतके तथा। भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः॥८८॥
शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्वर्णसंकरः। अशुचिः स्त्रीजितः शुद्धेच्चितादाहेन कालतः॥८९॥
न गृह्णन्तीच्छया तस्य पितरः पिण्डतर्पणम्। न गृह्णन्तीच्छया देवास्तस्य पुष्पजलादिकम्॥९०॥

से तुम्हारे पास आया हूँ। हे शोभने! गान्धर्व विवाह द्वारा मैं तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा। मैं ही दनु-वंश में उत्पन्न और विश्व के देवों को दलने वाला शंखचूड हूँ, जो श्रीहरि के गोलोक में पहले सुदामा नामक गोप था॥७८-८०॥ जो सुप्रसिद्ध आँठ गोप भगवान् के स्वयं पार्षद थे, उनमें एक मैं ही था। देवी राधिका के शाप से मैं दानवों का राजा हुआ हूँ॥८१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्र के प्रभाव से मुझे पिछले जन्म का स्मरण है और तुम्हें भी पूर्वजन्म का स्मरण है ही, क्योंकि तुम भी पूर्वजन्म में श्रीकृष्ण के पास रहनेवाली तुलसी थी॥८२॥ इस समय राधिका के कोप के कारण तुम्हारा जन्म भारत-भूमि पर हुआ है। उस समय वहाँ (गोलोक में) मैं तुम्हारे सम्भोग का बड़ा इच्छुक था, पर राधा के भय के कारण उसे पूरा न कर सका॥८३॥ हे महामुने! इतना कहकर वह युवक चुप हो गया। अनन्तर मुसकराती हुई तुलसी ने हर्षित होकर कहना आरम्भ किया॥८४॥

तुलसी बोली—इस प्रकार के सद्विचार से सम्पन्न विज्ञ पुरुष ही विश्व में सदा प्रशंसित होते हैं और स्त्री ऐसे ही सत्पति की निरन्तर अभिलाषा करती है॥८५॥ इस समय तुम्हारे विचार से मैं वस्तुतः पराजित हो गई। जिसे स्त्री ने जीत लिया हो वह पुरुष निन्दित और अपवित्र होता है॥८६॥ पितरगण और देवगण स्त्री-पराजित पुरुष की निन्दा करते हैं तथा पिता, भ्राता भी मन-वाणी से उसकी निन्दा करते रहते हैं॥८७॥ जन्म तथा मृत्यु के अशौच में ब्राह्मण दस दिनों पर, क्षत्रिय बारह दिनों पर, वैश्य पन्द्रह दिनों पर और शूद्र एक मास पर शुद्ध होता है किन्तु वर्णसंकर, उसकी माता और अपवित्र स्त्रीजित पुरुष चिता पर जलते समय ही शुद्ध होते हैं, ऐसा वेदों में कहा गया है। उसके दिए हुए पिण्ड और तर्पण पितर लोग इच्छा से नहीं ग्रहण करते हैं और

---

१ क. गोविन्दपा०। २ क. संभुक्ता। ३ क. माता।

किं तस्य[1] ज्ञानतपसा जपहोमप्रपूजनैः। किं विद्यया वा यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥९१॥
विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः। कृत्वा परीक्षां कान्तस्य वृणोति कामिनी वरम्॥९२॥
वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा। दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च॥९३॥
अत्यन्तकोपयुक्ताय चात्यन्तदुर्मुखाय च। पङ्गुलायाङ्गहीनाय चान्धाय बधिराय च॥९४॥
जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने। ब्रह्महत्यां लभेत्सोऽपि यः स्वकन्यां ददाति च॥९५॥
शान्ताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च। वैष्णवाय सुतां दत्त्वा दशवाजिफलं[2] लभेत्॥९६॥
यः कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयं यदि। विपदा धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति॥९७॥
कन्यामूत्रपुरीषं च तत्र भक्षति पातकी। कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥९८॥
तदन्ते व्याधयोनौ च लभते जन्म निश्चितम्। विक्रीणाति मांसभारं वहत्येव दिवानिशम्॥९९॥
इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोवने। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तयोरन्तिकमाययौ॥१००॥
मूर्ध्ना ननाम तुलसी शङ्खचूडश्च नारद। उवास तत्र देवेशश्चोवाच च तयोर्हितम्॥१०१॥

ब्रह्मोवाच

किं करोषि शङ्खचूड संवादमनया सह। गान्धर्वेण विवाहेन त्वमस्या ग्रहणं कुरु॥१०२॥
त्वं च पुरुषरत्नं च स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती। विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान्भवेत्॥१०३॥

उसके दिये हुए पुष्पजल आदि को देवता भी स्वेच्छापूर्वक नहीं स्वीकार करते हैं। इसलिए उसे ज्ञान, तप, जप, होम और अत्यन्त पूजन करने से क्या लाभ हो सकता है एवं उसकी विद्या और यश किस काम के हो सकते हैं, जिसका मन स्त्रियों के अधीन है ८८-९१॥ मैंने विद्या और प्रभाव जानने के लिए ही तुम्हारी परीक्षा की है, क्योंकि कान्त की परीक्षा करके ही कामिनी उसका वरण करती है॥९२॥ जो व्यक्ति गुणरहित, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, रोगी, निन्दित, अत्यन्त क्रोधी, अत्यन्त कटुभाषी, पंगु, अंगहीन, अन्धे, बहरे, जड़, गूंगे और नपुंसक (तुल्य) पापी को कन्या देता है, उसे ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है॥९३-९५॥ शान्त, गुणी, युवा, विद्वान्, और वैष्णव को कन्या प्रदान करने से दश अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है॥९६॥ जो कन्या को पाल-पोसकर विपत्ति अथवा धन-लोभ के कारण उसका विक्रय करता है, उसे कुम्भीपाक नरक में जाना पड़ता है॥९७॥ और वह पातकी वहाँ रहकर उसी कन्या का मल-मूत्र भक्षण करता है और चौदहों इन्द्रों के समय तक कीड़े और कौवे उसे काटते-नोचते रहते हैं॥९८॥ अन्त में वह व्याध के यहाँ निश्चित रूप से जन्म लेता है, जहाँ रातदिन उसे मांस का बोझा ढोना और बेंचना पड़ता है॥९९॥ उस तपोवन में इतना कहकर तुलसी चुप हो गयी। इसी बीच उन दोनों के पास वहाँ ब्रह्मा जी आ गये॥१००॥ हे नारद! तुलसी और शंखचूड ने उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। तब देवेश ब्रह्मा ने भी उन दोनों के हित की बातें कहीं॥१०१॥

ब्रह्मा बोले—शंखचूड! तुम इसके साथ संवाद क्या करते हो? तुम इससे गान्धर्व विवाह करके ग्रहण कर

---

१ क. तद्ध्यानेन त०। २ क. ०वापीफ०।

निर्विरोधसुखं राजन्को वा त्यजति दुर्लभम्। योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः॥१०४॥
किमुपेक्षसि[1] त्वं कान्तमीदृशं गुणिनं सति। देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दनम्॥१०५॥
यथा लक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथा कृष्णे च राधिका। यथा मयि च सावित्री भवानी च भवे यथा॥१०६॥
यथा धरा वराहे च यथा मेना हिमालये। यथाऽत्रावनसूया च दमयन्ती नले यथा॥१०७॥
रोहिणी च यथा चन्द्रे यथा कामे रतिः सती। यथाऽदितिः कश्यपे च वसिष्ठेऽरुन्धती यथा॥१०८॥
यथाऽहल्या गौतमे च देवहूतिश्च कर्दमे। यथा बृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा॥१०९॥
यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने। यथा शची महेन्द्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे॥११०॥
देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती। सौभाग्यासु प्रिया त्वं च शङ्खचूडे तथा भव॥१११॥
अनेन सार्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि। स्थाने स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु संततम्॥११२॥
पश्चात्प्राप्स्यसि गोविन्दं गोलोके पुनरेव च। चतुर्भुजं च वैकुण्ठे शङ्खचूडे मृते सति॥११३॥
इत्येवमाशिषं कृत्वा स्वालयं प्रययौ विधिः। गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः॥११४॥
स्वर्गे दुन्दुभिवाद्यं च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह। स रेमे रामया सार्धं वासगेहे मनोहरे॥११५॥
मूर्च्छां संप्राप तुलसी नवसंगमसंगता। निमग्ना निर्जने साध्वी संभोगसुखसागरे॥११६॥

लो। क्योंकि तुम पुरुषरत्न हो और यह स्त्रीरत्न है। विदग्ध-विदग्धा (चतुर नायक और चतुर नायिका) का संगम सुखकर होता है। राजन्! निर्विरोध सुख अत्यन्त दुर्लभ होता है, अतः कौन उसका त्याग कर सकता है? फिर ऐसे सुख का त्याग करने वाला पशु ही होता है, इसमें संशय नहीं। ।१०२-१०४॥ और तुम भी साध्वी होकर ऐसे स्वामी की उपेक्षा क्यों कर रही हो, जो सुन्दर, गुणी एवं देव, असुर और दानवों का विमर्दन करने वाला है॥१०५॥ जिस प्रकार लक्ष्मीश (विष्णु) में लक्ष्मी का, भगवान् श्रीकृष्ण में राधिका का, मुझमें सावित्री का, भव (शिव) में भवानी का, वराह भगवान् में पृथिवी का, हिमालय में मेना का, अत्रि में अनसूया का, नल में दमयन्ती का, चन्द्रमा में रोहिणी का, कामदेव में रति का, कश्यप में दिति का, वशिष्ठ में अरुन्धती का, गौतम में अहल्या का, कर्दम में देवहूति का, बृहस्पति में तारा का, मनु में शतरूपा का, यज्ञ में दक्षिणा का, अग्नि में स्वाहा का, इन्द्र में इन्द्राणी का, गणेश्वर में पुष्टि का, स्कन्द में देवसेना का और धर्म में मूर्ति का (निश्चल) प्रेम है, उसी भाँति शंखचूड में तुम्हारा अटल प्रेम हो और उसकी सौभाग्यवती अतिप्रेयसी बनो॥१०६-१११॥ सुन्दरि! इस सुन्दर युवक के साथ प्रत्येक स्थान में इच्छानुसार निरन्तर विहार करो॥११२॥ और शंखचूड के शरीर छोड़ देने पर तुम वैकुण्ठ में चतुर्भुज (विष्णु) तथा गोलोक में गोविन्द को पुनः प्राप्त करोगी॥११३॥ इतना कहकर ब्रह्मा अपने धाम को चले गये और दानव (शंखचूड) ने गान्धर्व-विवाह द्वारा उसका पाणिग्रहण किया॥११४॥ उसके उत्सव में स्वर्ग से देवों ने नगाड़े बजाये और पुष्पों की वर्षा की, अनन्तर उसने अपने मनोहर वास-भवन में उस रमणी के साथ रमण किया। उस नव समागम में तुलसी

---

१ क. किं परीक्ष्य०।

चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम्। कामशास्त्रे यन्निरुक्तं रसिकानां यथेप्सितम्॥११७॥
अङ्गप्रत्यङ्गसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम्। तत्सर्वं सुखशृङ्गारं चकार रसिकेश्वरः॥११८॥
अतीव रम्ये देशे च सर्वजन्तुविवर्जिते। पुष्पचन्दनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना॥११९॥
पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दनचर्चिते। गृहीत्वा रसिकां रामां पुष्पचन्दनचर्चिताम्॥१२०॥
भूषितां भूषणैः सर्वैरतीवसुमनोहराम्। सुरतेर्विरतिर्नास्ति तयोः सुरतविज्ञयोः॥१२१॥
जहार मानसं भर्तुर्लीलया तुलसी सती। चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित्॥१२२॥
वक्षसश्चन्दनं[1] बाह्वोस्तिलकं विजहार सा। स च जग्राह तस्याश्च सिन्दूरबिन्दुपत्रकम्॥१२३॥
स तद्वक्षसि तस्याश्च नखरेखां ददौ मुदा। सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम्॥१२४॥
राजा तदोष्ठपुटके ददौ दशनदंशनम्। तद्गण्डयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम्॥१२५॥
सुरतेर्विरतौ तौ च समुत्थाय परस्परम्। सुवेशं चक्रतुस्तत्र यत्तन्मनसि वाञ्छितम्॥१२६॥
कुङ्कुमाक्तचन्दनेन सा तस्मै तिलकं ददौ। सर्वाङ्गे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम्॥१२७॥
सुवासितं च ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी। पारिजातस्य कुसुमं[2] माल्यं चैव सुशोभनम्॥१२८॥

को मूर्च्छा आ गयी किन्तु पश्चात् वह पतिव्रता निर्जन स्थानों में जाकर सम्भोग सुख के सागर में निमग्न रहने लगी॥ चौंसठ कलाओं द्वारा चौंसठ प्रकार के सुख तथा कामशास्त्र में रसिकों के लिए कहे गये यथेच्छ सुख एवं स्त्री के मनोहर अंग-प्रत्यंग के आलिंगन सुख आदि समस्त सुखश्रृंगार को उस रसिकेश्वर ने उसके साथ प्राप्त किया॥११५-११८॥ अत्यन्त रमणीक प्रदेश में, जो सभी जन्तुओं से शून्य था, पुष्पचन्दन की शय्या पर पुष्पचन्दन के (मन्द, सुगन्ध) वायु में उसने अति आनन्द प्राप्त किया॥११९॥ नदी के किनारे पुष्पवाटिका में पुष्प-चन्दन-चर्चित शय्या पर पुष्पचन्दन से भूषित उस रसिकप्रिया को भूषण आदि से अत्यन्त सुसज्जित करके दानवेन्द्र ने मनोहारिणी के साथ सुरत-सम्भोग किया। अनन्तर वे दोनों सुरतवेत्ता इतने आनन्दमग्न हो गए कि उन्हें उससे कभी विरति ही नहीं होती थी॥१२०-१२१॥ उस सती तुलसी ने अपनी लीलाओं द्वारा पति का मन अपने अधीन कर लिया और उस रसिक ने भी उस रसीली कामिनी की चेतना को अपने अधीन कर लिया॥१२२॥ उस रति-क्रीड़ा में तुलसी ने उसके वक्षःस्थल का चन्दन और बाँह पर का तिलक मिटा दिया, तो उस युवक ने भी उसका सिन्दूर-बिन्दु-पत्र ले लिया॥१२३॥ उन्होंने आनन्दविभोर होकर उस कामिनी के वक्षःस्थल में नख-रेखा बनायी, तो उस कामिनी ने भी उसके बायें हाथ में अपने हाथ के भूषण के चिह्न बना दिये॥१२४॥ राजा ने उसके होंठ को अपने दांतों से काट लिया, तो उसके दोनों कपोलों में उससे चौगुना उस सुन्दरी ने भी काट लिया॥१२५॥ पुनः रति करने के अनन्तर दोनों उठकर एक दूसरे को यथेष्ट ढंग से सजाने लगे॥१२६॥ तुलसी ने उसको कुंकुम मिश्रित चन्दन का तिलक लगाया और उसके सुन्दर सर्वांग में अनुलेपन कर दिया। अत्यन्त सुवासित ताम्बूल अग्निविशुद्ध

---

१ क. ०नं राज्ञस्ति०। २ क ०मं जरारोगहरं परम्।

अमूल्यरत्ननिर्माणमङ्गुलीयकमुत्तमम् । सुन्दरं च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१२९॥
दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनः पुनः । ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम् ॥१३०॥
सस्मिता तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यां पपौ पुनः। निमेषरहिताभ्यां च सकटाक्षं च सुन्दरम् ॥१३१॥
स च तां च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम्। सस्मितं वाससा छन्नं ददर्श मुखपंकजम् ॥१३२॥
चुचुम्ब कठिने गण्डबिम्बोष्ठे पुनरेव च। ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतं च यत् ॥१३३॥
तदा हृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु विश्रुताम् ॥१३४॥
ददौ मञ्जीरयुग्मं च स्वाहायाश्च हृतं च यत्। केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैव कुण्डलम् ॥१३५॥
अङ्गुलीयकरत्नानि[१] रत्याश्च वरभूषणम्। शङ्खं सुरुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा ॥१३६॥
[२]विचित्रपीठकश्रेणीं शय्यां चापि सुदुर्लभाम्। भूषणानि च दत्त्वा च परीहारं चकार ह ॥१३७॥
निर्ममे कबरीभारं तस्याश्च माल्यसंयुतम्। सुचित्रं पत्रकं गण्डे जयलेखसमं तथा ॥१३८॥
चन्द्रलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना। परितः परितश्चित्रैः सार्धं कुङ्कुमबिन्दुभिः ॥१३९॥
ज्वलत्प्रदीपाकारं च सिन्दूरतिलकं ददौ। तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिन्दिते ॥१४०॥
चित्रालक्तकरागं च नखरेषु ददौ मुदा। स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्तं सरागं चरणाम्बुजम् ॥१४१॥

दो वस्त्र और पारिजात का पुष्प ग्रहण करउ सी की सुन्दर माला से अपने को विभूषित किया। अमूल्य रत्नों की अंगूठी, जो तीनों लोकों में दुर्लभ एवं सुन्दर श्रेष्ठ मणि से बनी थी, शंखचूड को पहनाकर उससे बार-बार कहने लगी कि मैं आप की दासी हूँ। फिर उसने अपने गुणशाली स्वामी को भक्तिभाव के साथ प्रणाम किया ॥१२७-१३०॥ अनन्तर तुलसी मुसकराकर अपने अपलक नेत्रों से कटाक्ष के साथ शंखचूड के मुखकमल का पान करने लगी ॥१३१॥ उस समय उस युवक ने उसे अपनी ओर खींचकर अपनी छाती से चिपका लिया और मन्द मुसकान से सुशोभित उस प्रेयसी के मुखकमल को देखा, जो वस्त्र से आवृत था ॥१३२॥ उपरान्त उसके कठिन गण्डस्थल का चुम्बन करके पुनः बिम्बाफल के समान ओठों का चुम्बन किया। फिर वरुण के यहाँ से लाया हुआ वस्त्र और तीनों लोकों में विख्यात रत्नमाला उसे पहनाई ॥१३३-१३४॥ स्वाहा से छीनकर लाये हुए दोनों नूपुर, छाया के दोनों केयूर (बहूँटा), रोहिणी के कुण्डल, रति की अंगूठी एवं आभूषण, विश्वकर्मा के दिये हुए शंख, सुन्दर चित्र, अनेक प्रकार के आसन, सुदुर्लभ शय्या और बहुत-से गहने देकर पहनाये ॥१३५-१३७॥ उसके जूड़े को माला से सजाया। गण्डस्थल पर जयलेखा के समान सुन्दर पत्र-रचना की ॥१३८॥ सुगन्धित चन्दन की तीन चन्द्रलेखाओं से युक्त किया। फिर चारों ओर कुंकुमविन्दुओं के साथ अनेक चित्र बनाये ॥१३९॥ जलते हुए दीपक के आकार में सिन्दूर का तिलक लगाया स्थलकमल से भी उत्तम उसके दोनों चरणारविन्द में महावर लगाया तथा नखों को रंगा फिर रंगे हुए उसके चरण-कमल को थोड़ी देर के लिए अपने वक्षःस्थल पर रखकर बार-बार कहा—हे देवि ! मैं तुम्हारा दास हूँ। अनन्तर

---

१ क. ०नि रेवत्याः करमू० । २ क. ० त्रपाशकश्रेणीं शच्याश्चापि ।

हे देवि तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनः पुनः। रत्ननिर्माणयानेन तां च कृत्वा स्ववक्षसि ॥१४२॥
तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानान्तरं ययौ। मलये देवनिलये शैले शैले वने वने ॥१४३॥
स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्यानेऽतिनिर्जने। कन्दरे कन्दरे सिन्धुतीरे तीरेऽतिसुन्दरे ॥१४४॥
पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे। पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे ॥१४५॥
मधौ मधुकराणां च मधुरध्वनिनादिते। विनिस्यन्दे सुपवने नन्दने गन्धमादने ॥१४६॥
देवोद्याने देववने चित्रे चन्दनकानने। चम्पकानां केतकीनां माधवीनां च माधवे ॥१४७॥
कुन्दानां मालतीनां च कुमुदाम्भोजकानने। कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने ॥१४८॥
निर्जने काञ्चनस्थाने धन्ये काञ्चनपर्वते। काञ्चीवने किञ्जलके कञ्चुके काञ्चनाकरे ॥१४९॥
पुष्पचन्दनतल्पे च पुंस्कोकिलरुते श्रुते। पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना ॥१५०॥
कामुकया कामुकः कामात्स रेमे रामया सह। न तृप्तो दानवेन्द्रश्च तृप्तिं नैव जगाम सा ॥१५१॥
हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः। तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः ॥१५२॥
रम्यं क्रीडालयं कृत्वा विजहार पुनस्ततः। एवं संबुभुजे राज्यं शङ्खचूडः प्रतापवान् ॥१५३॥
एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो बली। देवानामसुराणां च दानवानां च संततम् ॥१५४॥
गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानां च शास्तिदः। हृताधिकारा देवाश्च चरन्ति भिक्षुका यथा ॥१५५॥
पूजाहोमादिकं तेषां जहार विषयं बलात्। आश्रयं चाधिकारं च शस्त्रास्त्रभूषणादिकम् ॥१५६॥

उस कामिनी को अपनी छाती से चिपकाकर राजा रत्नखचित विमान द्वारा उस तपोवन से दूसरे स्थान में चला गया। इस प्रकार मलय पर्वत पर, देव-स्थानों में, पर्वतों पर, जंगलों में, रमणीक स्थानों में, अति निर्जन पुष्पवाटिकाओं में, कन्दराओं में, अत्यन्त सुन्दर सिन्धुनदी के जल में तथा तट पर, सुन्दर वन में, पुष्पभद्रा नदी के तट पर, सुन्दर जलवायु से युक्त नदी-तटों पर, दिव्य नदियों एवं नदों के किनारे, मधुमास में भ्रमरों की मधुर ध्वनि से गुंजित उपवनों में, झरनों के पास, नन्दन वन में, गन्धमादन पर्वत पर, देवोद्यान में, चित्र वन में, चन्दनवन में तथा चम्पा, केतकी, माधवी-लता, कुन्द, मालती, कुमुद, कमल, कल्पवृक्ष, एवं पारिजात के वनों में, निर्जन काञ्चनस्थान में, रम्य सुमेरुपर्वत पर, कांचीवन में, किञ्जलक वन में तथा काञ्चनाकर (सोने की खान) में पुष्पचन्दन की शय्या पर, कोकिल की कूक सुनते हुए, पुष्पचन्दन के वायु से सम्पृक्त और पुष्पचन्दन से सुशोभित होकर वह कामुक कामुकी रमणी के साथ कामभाव से रमण करता रहा। किन्तु उन दोनों (कामुक-कामुकी) को सम्भोग से तृप्ति नहीं हुई ॥१४०-१५१॥ घृत डालने से अग्नि की भाँति उन दोनों में कन्दर्प की अतिवृद्धि हो गयी। पश्चात् वह दानव उसके साथ अपने घर आया और एक अलग रमणीक रतिगृह बनवा कर पुनः उसके साथ सम्भोग करने में जुट गया। इस प्रकार प्रतापी शंखचूड ने राज्य का सुखानुभव किया। ॥१५२-१५३॥ उस बली राजराजेश्वर ने एक मन्वन्तर के पूर्ण समय तक देवों, असुरों, दानवों, गन्धर्वों, किन्नरों और राक्षसों पर शासन किया। उसके द्वारा अधिकार छिन जाने पर देवगण भिक्षुक की भाँति इधर-उधर घूमने लगे ॥१५४-१५५॥ शंखचूड ने उनके पूजाहोमादि, राज्य, निवास-स्थान, अधिकार तथा शस्त्रास्त्र और भूषणादि

**निरुद्यमाः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा। ते च सर्वे विषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम्॥१५७॥
वृत्तान्तं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः। तदा ब्रह्मा सुरैः सार्धं जगाम शंकरालयम्॥१५८॥
सर्वं संकथयामास विधाता चन्द्रशेखरम्। ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्धं वैकुण्ठं च जगाम ह॥१५९॥
सुदुर्लभं परं धाम जरामृत्युहरं परम्। संप्राप च वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो॥१६०॥
ददर्श द्वारपालाश्च रत्नसिंहासनस्थितान्। शोभितान्पीतवस्त्रांश्च रत्नभूषणभूषितान्॥१६१॥
वनमालान्वितान्सर्वाञ्श्यामसुन्दरविग्रहान्। शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान्॥१६२॥
सस्मितान्पद्मवक्त्रांश्च पद्मनेत्रान्मनोहरान्। ब्रह्मा तान्कथयामास वृत्तान्तं गमनार्थकम्॥१६३॥
तेऽनुज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया। एवं च षोडश द्वारान्निरीक्ष्य कमलोद्भवः॥१६४॥
देवः सार्धं ताननतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम्। देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः॥१६५॥
नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः। पूर्णेन्दुमण्डलाकारां चतुरस्रां मनोहरम्॥१६६॥
मणीन्द्रसारनिर्माणां हीरासारसुशोभिताम्। अमूल्यरत्नखचितां रचितां स्वेच्छया हरेः॥१६७॥
माणिक्यमालाजालाढ्यां मुक्तापङ्क्तिविभूषिताम्। मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः॥१६८॥
विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम्। पद्मरागेन्द्ररचितै [1]रचितां पद्मकृत्रिमैः॥१६९॥**

को बलात् ले लिया॥१५६॥ जिससे उद्यमहीन देवगण चित्र-पुत्तलिका (गुड़िया) की भाँति बने रहे। अनन्तर अत्यन्त दुःखी होकर वे सब ब्रह्मा की सभा में गये॥१५७॥ वहाँ अपना वृत्तान्त कहकर बहुत रोने लगे। तब ब्रह्मा उन्हें साथ लेकर शिव जी के पास गए॥१५८॥ विधाता ने चन्द्रशेखर शिव से सारा वृत्तान्त कह सुनाया, जिसे सुनने के उपरान्त शिव उन्हें साथ लेकर वैकुण्ठ गये॥१५९॥ भगवान् शिव जरा और मृत्यु से रहित उस अत्यन्त दुर्लभ लोक में पहुँचकर, श्रीहरि के भवन के परम श्रेष्ठ द्वार पर उपस्थित हुए।॥१६०॥ वहाँ उन्होंने रत्न के सिंहासनों पर विराजमान द्वारपालों को देखा, जो पीताम्बर और रत्नों के भूषणों से सुशोभित हो रहे थे॥१६१॥ तथा वनमाला पहने वे सभी द्वारपाल श्यामसुन्दर थे और चारों भुजाओं में शंख चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए थे।॥१६२॥ मुसकान भरे कमलमुख एवं कमलनेत्र वाले उन मनोहर द्वारपालों से ब्रह्मा ने वहाँ आने का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया॥१६३॥ अनन्तर उन लोगों ने ब्रह्मा आदि को भीतर जाने की अनुमति प्रदान की। इस प्रकार सोलह द्वारों को पार करके ब्रह्मा देवों के साथ भगवान् की उस सभा में पहुँचे, जहाँ देवर्षिगण तथा चतुर्भुज पार्षदगण शोभायमान थे॥१६४-१६५॥ वहाँ के सभी पार्षद नारायण स्वरूप और कौस्तुभ मणि से भूषित थे। वह सभा भी पूर्ण चन्द्रमा की भाँति मण्डलाकार, चौकोर, मनोहर, श्रेष्ठ मणियों के सार भाग से सुरचित, हीरों के सारभाग से सुशोभित, अमूल्य रत्नों से खचित, तथा भगवान् विष्णु की इच्छा से बनी थी॥१६६-१६७॥ माणिक्य-मालाएँ जाली के रूप में शोभा दे रही थीं। और दिव्य मोतियों की झालरें उसकी छवि बढ़ा रही थीं। मंडलाकार करोड़ों रत्नमय दर्पणों से वह सभा सुशोभित थी। उसकी दीवारों में लिखित अनेक प्रकार के विचित्र चित्र उसकी

१ क. ०चितां पद्मरागविचित्रितैः।

सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः। पट्टसूत्रग्रन्थियुतैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥१७०॥
इन्द्रनीलमणिस्तम्भैर्वेष्टितां सुमनोरमाम्। सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम् ॥१७१॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम्। कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च सुगन्धिचन्दनद्रवैः ॥१७२॥
सुसंस्कृतां तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना। विद्याधरीसमूहानां संगीतैश्च मनोहराम् ॥१७३॥
सहस्रयोजनायामां परिपूर्णां च किंकरैः। ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शंकरश्च सुरैः सह ॥१७४॥
वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुं तारकावृतम्। अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥१७५॥
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्। शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं च चतुर्भुजम् ॥१७६॥
नवीननीरदश्यामं सुन्दरं सुमनोहरम्। अमूल्यरत्ननिर्माणसर्वाभरणभूषितम् ॥१७७॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं बिभ्रतं केलिपङ्कजम्। पुरतो नृत्यगीतं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥१७८॥
शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम्। भक्तप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥१७९॥
गङ्गया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः। सर्वैश्च स्तूयमानं च भक्तिनम्रात्मकंधरैः ॥१८०॥
एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं विभुम्। ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा ॥१८१॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः। भक्त्या परमया भक्ता भीता नम्रात्मकंधराः ॥१८२॥

सुन्दरता बढ़ा रहे थे। सर्वोत्कृष्ट पद्मराग मणि से निर्मित कृत्रिम कमलों से वह परम सुशोभित थी। स्यमन्तक मणि से बनी हुई सैकड़ों सीढ़ियाँ उस भवन की शोभा बढ़ाती थीं। रेशम की डोरी में गुँथे हुए दिव्य चन्दन-वृक्ष के सुन्दर पल्लव बंदनवार का काम दे रहे थे। वहाँ के खंभों का निर्माण इन्द्रनील मणि से हुआ था। उत्तम रत्नों से भरे कलशों से संयुक्त वह सभा अत्यन्त मनोरम जान पड़ती थी ॥१६८-१७१॥ पारिजात पुष्पों के बहुत-से हार उसे अलंकृत किये हुए थे। कस्तूरी एवं कुंकुम से युक्त सुगंधपूर्ण चंदन के द्रव से वह भवन सुसज्जित तथा सुसंस्कृत किया गया था। सुगंधित वायु से वह सभा सब ओर से सुवासित थी और विद्याधरियों के संगीत से मनोहर थी॥ १७२-१७३॥ एक सहस्र योजन विस्तृत उसका क्षेत्र सेवकों से परिपूर्ण था। इस प्रकार वहाँ शंकर आदि देवों समेत ब्रह्मा ने भगवान् श्री हरि का दर्शन किया। वे उस (भवन) के मध्य प्रदेशमें तारों से घिरे चन्द्रमा की भाँति सुशोभित, अमूल्य रत्नों से निर्मित अद्भुत सिंहासन पर विराजमान, किरीट, कुण्डल एवं वनमाला से सुशोभित, चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए, नवीन जलधर की भाँति श्यामल, सुन्दर, अत्यन्त मनोहर और अमूल्य रत्नों से निर्मित समस्त आभूषणों से विभूषित थे ॥१७४-१७७॥ उनके सम्पूर्ण अंग चन्दन से अनुलिप्त थे। एक हाथ में कमल शोभा पा रहा था। भगवान् का श्रीविग्रह अतिशय शान्त था ॥१७८॥ लक्ष्मी उनके चरणकमलों की सेवा में संलग्न थीं। भगवान् भक्तों के दिए सुवासित ताम्बूल खा रहे थे। गंगा उन पर अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्वेत चामर डुला रही थीं। उपस्थित समाज अत्यन्त भक्ति-विनम्र होकर उनकी स्तुति कर रहा था ॥१७९-१८०॥ इस प्रकार सुशोभित उस परिपूर्णतम प्रभु को देख कर ब्रह्मा आदि देवगण उन्हें प्रणाम कर के स्तुति करने लगे ॥१८१॥ उन देवों के सर्वांग में रोमांच, नेत्रों में आँसू एवं वाणी गद्गद थी। वे भीत भक्तगण अत्यन्त भक्ति से कन्धे झुकाए हुए थे ॥१८२॥ पश्चात् जगत् के विधाता

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा विधाता जगतामपि। वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुरः ॥१८३॥
हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित्[1]। प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यं च मनोहरम् ॥१८४॥
शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज। मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥१८५॥
सुराः शृणुत तत्सर्वमितिहासं पुरातनम्। गोलोकस्यैव चरितं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥१८६॥
सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम। स प्राप दानवीं योनिं राधाशापात्सुदारुणात् ॥१८७॥
तत्रैकदाऽहमगमं स्वालयाद्रासमण्डलम्। विहाय मानिनीं राधां मम प्रणाधिकां पराम् ॥१८८॥
सा मां विरजया सार्धं विज्ञाय किंकरीमुखात्। पश्चात्क्रुधा साऽऽजगाम मां ददर्श च तत्र च ॥१८९॥
विरजां च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम्। पुनर्जगाम सा रुष्टा स्वालयं सखिभिः सह ॥१९०॥
मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदामसहितं[2] पुरा। भृशं मां भर्त्सयामास मौनीभूतं च सुस्थिरम् ॥१९१॥
तच्छ्रुत्वा च सुमहांश्च सुदामा तां चुकोप ह। स च तां भर्त्सयामास कोपेन मम संनिधौ ॥१९२॥
तच्छ्रुत्वा सा कोपयुक्ता रक्तपङ्कजलोचना। बहिष्कर्तुं चकाराऽऽज्ञां संत्रस्ता[3] मम संसदि ॥१९३॥
सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोज्ज्वलम्। बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तं च पुनः पुनः ॥१९४॥
सा च तद्वचनं श्रुत्वा समारुष्टा शशाप तम्। याहि रे दानवीं योनिमित्येवं दारुणं वचः ॥१९५॥

ब्रह्मा ने भगवान् के सामने हाथ जोड़ कर विनम्रतापूर्वक समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥१८३॥ सर्वज्ञ एवं समस्त भावों के वेत्ता भगवान् विष्णु उनकी बात सुन कर हँस पड़े और फिर ब्रह्मा से मनोहर रहस्य की बात बताने लगे ॥१८४॥

भगवान् बोले—विधाता! मैं शंखचूड़ का समस्त वृत्तान्त जानता हूँ, जो पहले मेरा भक्त एवं महातेजस्वी गोप था। देवगण! मैं उसका सभी पुरातन इतिहास बता रहा हूँ, जो गोलोक का ही पापनाशक एवं पुण्यजनक चरित है, सुनो ॥१८५-१८६॥ सुदामा नामक गोप मेरा एक श्रेष्ठ पार्षद था, जो राधा के अत्यन्त दारुण शापवश दानव-योनि में पहुँच गया है। एक बार मैं अपनी प्राणेश्वरी राधा को छोड़ कर अपने भवन से रासमण्डल में गया। उस समय राधिका जी किसी सेविका के मुख से विरजा के साथ मेरा रहना सुन कर क्रोधावेश में वहाँ आयीं। उन्होंने हमें देख लिया ॥१८७-१८९॥ किन्तु विरजा को नदी रूप में और मुझे तिरोहित देख कर वे उसी क्रोधावेश में सखियों समेत पुनः निजी भवन में लौट गयीं ॥१९०॥ पुनः वहाँ मन्दिर में सुदामा समेत मुझे देख कर वे मुझे बहुत डाँटने लगीं, किन्तु मैं एक दम मौन और सुस्थिर था ॥१९१॥ वह सुनकर महान् पार्षद सुदामा को सहन न हो सका। उसने कोप किया और मेरे समीप ही राधा को फटकार बतायी ॥१९२॥ उसे सुनकर राधा के नेत्र अत्यन्त क्रोध से रक्त कमल की भाँति (लाल) हो गए। उन्होंने संत्रस्त होकर मेरी सभा से उसे निकालने की आज्ञा दे दी ॥१९३॥ अनन्तर एक लाख सखियों का समूह उठा और उस दुर्वार तेजस्वी को तुरन्त बाहर निकाल दिया, जो बार-बार बक रहा था ॥१९४॥ अनन्तर उसकी बातें सुन कर राधा ने रोष भरे शब्दों में यह दारुण वचन कहा—'रे दुष्ट! तू दानवी योनि में जा' ॥१९५॥ शाप होने पर वह मुझे प्रणाम कर के रोते हुए जा रहा था, उसे देख कर राधा को

---

१ क. ०त्रनः। २ क. ०मसेवितं। ३ क. संरम्भान्म०।

तं गच्छन्तं शपन्तं च रुदन्तं मां प्रणम्य च। वारयामास सा तुष्टा रुदती कृपया पुनः ॥१९६॥
हे वत्स तिष्ठ मा गच्छ क्व यासीति पुनः पुनः। समुच्चार्य च तत्पश्चाज्जगाम सा च विस्मिता[1] ॥१९७॥
गोप्यश्च रुरुदुः सर्वा गोपाश्चेति सुदुःखिताः। ते सर्वे राधिका चापि तत्पश्चाद्बोधिता मया ॥१९८॥
आयास्यति क्षणार्धेन कृत्वा शापस्य पालनम्। सुदामंस्त्वमिहाऽऽगच्छेत्युवाच सा निवारिता ॥१९९॥
गोलोकस्य क्षणार्धेन चैकमन्वन्तरं भवेत्। पृथिव्यां जगतां धातुरित्येवं वचनं ध्रुवम् ॥२००॥
स एव शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रैव यास्यति। महाबलिष्ठो योगीशः सर्वमायाविशारदः ॥२०१॥
मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम्। शिवः करोतु संहारं मम शूलेन रक्षसः ॥२०२॥
ममैव कवचं कण्ठे सर्वमङ्गलमङ्गलम्। बिभर्ति दानवः शश्वत्संसारविजयी ततः ॥२०३॥
कवचे संस्थिते तत्र न कोऽपि हिंसितुं क्षमः। तद्याच्ञां च करिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च ॥२०४॥
सतीत्वभङ्गस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति। तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया ॥२०५॥
तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम् तत्क्षणेनैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः ॥२०६॥
पश्चात्सा देहमुत्सृज्य भविष्यति प्रिया मम। इत्युक्त्वा जगतां नाथो ददौ शूलं हराय च ॥२०७॥

अत्यन्त करुणा हुई। वे सन्तुष्ट होकर स्वयं रोती हुई कृपा कर के उसे जाने से रोकने लगीं ॥१९६॥ 'हे वत्स ! ठहरो, मत जाओ, कहाँ जा रहे हो' ऐसा बार-बार कहने लगीं। पश्चात् उन्हें रोदन करते और आश्चर्यचकित देख कर सभी गोप-गोपियाँ दुःखी होकर रोदन करने लगीं। तब मैंने राधिका समेत उन सभी को समझा कर शांत किया और कहा—'वह आधे क्षण में शाप का पालन कर पुनः यहाँ आ जायगा।' किन्तु मना करने पर भी राधा जी कहती ही रहीं—'हे सुदामन् ! तू यहाँ आ, वहाँ मत जा।'

हे जगत् के रक्षक ब्रह्मन् ! गोलोक के आधे क्षण में ही भूमण्डल पर एक मन्वन्तर का समय हो जाता है। ब्रह्मन् ! इस प्रकार यह सब कुछ पूर्व निश्चित व्यवस्था के अनुसार ही हो रहा है। अतः सम्पूर्ण मायाओं का पूर्ण ज्ञाता, अपर बल-शाली योगीश यह शंखचूड़ समय पर पुनः उस गोलोक में ही चला जाएगा ॥१९७-२०१॥ अतः शंकर मेरा शूल लेकर भारत देश में चले जायँ और मेरे शूल से उस राक्षस का वध करें ॥२०२॥ उस दानव के कंठ में समस्त मंगलों का मंगल मेरा कवच पड़ा हुआ है। इसीलिए वह संसार में निरन्तर विजयी हो रहा है ॥२०३॥ ब्रह्मन् ! उसके कण्ठ में जब तक वह रहेगा, उसको कोई भी मार नहीं सकता है। अतः मैं ब्राह्मण रूप होकर उससे उसकी याचना करूँगा ॥२०४॥ और जिस समय उसकी पत्नी का सतीत्व भंग होगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी, ऐसा तुमने उसे वरदान भी दिया है ॥२०५॥ एतदर्थ मैं उसकी पत्नी के उदर में निश्चित रूप से वीर्य स्थापित करूँगा और उसी क्षण उसकी मृत्यु भी होगी, इसमें संशय नहीं है ॥२०६॥ पश्चात् वह स्त्री देह त्याग कर मेरी प्रेयसी होगी। इतना कह कर जगत् के स्वामी श्रीहरि ने शिव को अपना शूल दे दिया और प्रसन्न होकर वे अपने भवन में

---

१ क. विक्लवा।

शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यन्तरं मुदा। भारतं च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥२०८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० तुलस्युपाख्याने षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च। जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं महामुने ॥१॥
चन्द्रभागानदीतीरे घटमूले मनोहरे। तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे ॥२॥
दूतं कृत्वा पुष्पदन्तं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम्। शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिकं मुदा ॥३॥
स चेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं वरम्। महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥४॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्यै तद्द्विगुणं मुने। स्फाटिकाकारमणिभिः समन्तात्परिवेष्टितम् ॥
सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥५॥
ज्वलदग्निनिभैर्नित्यं शोभितं रत्नकोटिभिः । युक्तं च वीथिशतकैर्मणिवेदिसमन्वितैः ॥६॥

चले गए। अनन्तर ब्रह्मा ने शिव को आगे कर के वहाँ से प्रस्थान किया और देवगण भी भारत में चले गये ॥२०७-२०८॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसी-उपाख्यान नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १७

पुष्पदन्त का दूत बनकर शंखचूड़ के पास जाना

नारायण बोले—महामुने ! ब्रह्मा शिव को दानव शंखचूड़ का संहार करने के लिए नियुक्त कर के स्वयं शीघ्र अपने धाम में चले गए ॥१॥ अनन्तर चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित एक मनोहर वट वृक्ष के नीचे देवों का अभ्युदय करने के विचार से शिव ने आसन जमा लिया। उन्होंने गन्धर्वराज पुष्पदन्त को दूत बना कर तुरन्त हर्षपूर्वक शंखचूड़ के पास भेजा ॥२-३॥ शिव की आज्ञा से वह दूत शीघ्र दानव के उस नगर की ओर चल पड़ा, जो महेन्द्र की पुरी (अमरावती) से उत्कृष्ट और कुबर के भवन से अधिक सुशोभित था ॥४॥ मुने ! वह नगर पाँच योजन चौड़ा और दस योजन लंबा था। वह स्फटिक के समान मणियों से चारों ओर घिरा हुआ था और सात दुर्गम परिखाओं (खाइयों) से युक्त था ॥५॥ एवं प्रज्वलित अग्नि के समान करोड़ों रत्नों से शोभित, मणि की वेदियों और सैकड़ों वीथियों (गलियों) से समन्वित था ॥६॥ चारों ओर वैश्यों की अनेक प्रकार की वस्तुओं से सजी हुई दूकानों से